

प्रकाशक :—

शंकरदान शुभैराज नाहटा

५१६, आर्मेनियन स्ट्रीट,

कलकत्ता ।

मुद्रक :—

भगवतीप्रसाद सिंह

न्यू राजस्थान प्रेस,

७३।ए, चासाघोवापाड़ा स्ट्रीट,

कलकत्ता ।



मणिधारी श्रीजिनचन्द्रमूरि



श्री शकरदानजी नाहटा

सुसु पुराणा

$\frac{1}{2} \times \frac{1}{2}$      $\frac{1}{2} \times \frac{1}{2}$      $\frac{1}{2} \times \frac{1}{2}$      $\frac{1}{2} \times \frac{1}{2}$      $\frac{1}{2} \times \frac{1}{2}$

THE UNIVERSITY OF CHICAGO

[illegible]

*Journal of Management Education* 30(6)

[illegible]

1990

*Journal of Management Studies*, 19(1), 67-80.

Group	Condition A	Condition B	Condition C	Condition D
Control	95	90	95	90
MCI	90	85	85	60
AD	85	80	80	40
DLB	80	75	75	20

$\frac{1}{2} \times \frac{1}{2}$        $\frac{1}{2} \times \frac{1}{2}$        $\frac{1}{2} \times \frac{1}{2}$

4                7                10

3

100

2.

[illegible]



किञ्चिन् वक्तव्य

हृदयं हृत्तमसि हृत्तमसि हृत्तमसि हृत्तमसि हृत्तमसि

$\frac{1}{2} \times \frac{1}{2} = \frac{1}{4}$

[illegible]

न्याय से यह चरित्र स्वतन्त्र रूप से प्रकाशित करते हुए हमें हर्ष होता है ।

हमें यह देख कर दुःख होता है कि लोगों में साहित्यिक रुचि का बड़ा ही अभाव है । खास कर राजस्थानी और जैन साहित्य के प्रति तो हिन्दी भाषा-भाषियों का रुख बड़ा ही विचारणीय है । यदि यह विचार किया जाय तो प्रमाणित होगा कि ये दोनों साहित्य भारतीय भाषाओं में संस्कृत को छोड़ कर बाकी किसी भी भाषा के साहित्य-भंडार से टकर ले सकते हैं । पर जैन समाज और राजस्थानी सत्तार अपनी इस साहित्य निधि को इस प्रकार मुलाये बैठा है मानो उससे उसका कुछ सम्बन्ध ही नहीं है । यदि हम और भी संकुचित दृष्टि से विचार करें तो मालूम होगा कि, खरतरगच्छ में दादाजी के हजारों भक्त हैं । साथ ही दादाजी के माननेवालों की तादाद अन्य गच्छों में भी काफी है । भावुक श्रावक दादाजी के मंदिर, पादुकाओं के स्थापनादि कार्यों में दिल खोलकर 'खर्च' करते हैं । मुक्तहस्त होकर उनकी सेवा-भावना का प्रसार होता है । पर सबसे अधिक दुःख तो इस बात का है कि, हम जिनकी अर्चना, सेवा और भक्ति-प्रदर्शन के लिये इतनी धनराशि व्यय करते हैं-उनकी कृतियों का, उनके अप्रतिम चरित्रों को जानने की ओर दृष्टिपात भी नहीं करते । यह 'जाति की भरणोन्मुखता का ही द्योतक है । जागृत जातिर्या कभी भी ऐसा नहीं कर सकती । इससे कोई हमारा मतलब यह नहीं समझे कि हम पूजा-अर्चना

की अवहेलना करने की सिफारिश करते हैं पर हमारा नम्र निवेदन तो इतना ही है कि, लोग पूजा करें—दिन दूनी करें पर साथ ही इस बात का ज्ञान भी प्राप्त करने का प्रयास करें कि हमारे आराध्य देवों ने, हमारे पूज्यवर आचार्यों ने संसार को जो अतुलनीय ज्ञान दिया है वह क्या है—उन्होंने संसार के लिये क्या क्या रत्न छोड़े हैं। आशा है समाज हमारे इस निवेदन पर गंभीरता से विचार करेगा।

आज 'बंगला साहित्य' इतनी समृद्धि पर इसीलिये है कि बंगाली जाति ने उसको गौरव के साथ देखा है। अपने लेखकों, साहित्य-स्रष्टाओं को उसने उच्च आसन पर बैठाया है। उसने अपने साहित्य की भित्ति पर अपनी जाति का निर्माण किया है। पर हमारा समाज साहित्य से एक दम उदासीन है। वह पूजा करता है, पर यह नहीं जानता कि वह क्यों और किस प्रकार के महान् पुरुष के महान् आदर्श की अर्चना करता है। यह स्थिति दुःखद है और उज्ज्वल भविष्य की सूचना नहीं देती। हमने इसके पूर्व जैन साहित्य के १० ग्रन्थ प्रकाशित किये हैं। जिनमे दो तो दादाजी आचार्यों के जीवनचरित्र ही हैं और एक ऐतिहासिक जैन काव्यों का बृहत् संग्रह है। यदि जैन समाज इसको समुचित आदर के साथ स्वीकार कर लेता तो दिन पर दिन इस प्रकार के ग्रन्थों को शीघ्रातिशीघ्र प्रकाशित करने का प्रयास किया जाता। भारतीय विद्वानों ने तो इन ग्रन्थों का बहुत ही आदर किया है। भारतीय पत्रों ने इनकी



बहुत ही प्रशंसा की है। पूज्य मुनिराज श्रीलब्धिमुनिजी ने युगप्रधान श्रीजिनचन्द्रसूरि और दादा श्रीजिनकुशलसूरि इन दोनों ग्रन्थों के आधार पर संस्कृत काव्यों का भी निर्माण किया है। पर हमें समाज की ओर से जैसा चाहिए उत्साह नहीं मिला। फिर भी 'ऋमण्येवाधिकारस्तं मा फलेषु कदाचन' की सुप्रसिद्ध उक्ति के अनुसार हम अपने कर्त्तव्य-मार्ग पर दृढ़ हैं और यह ग्यारहवां पुण्य समाज की सेवा में इस आशा के साथ रख रहे हैं कि कभी न कभी समाज में जागृति होगी ही।

श्रीमणिवारीजी का चरित्र बहुत ही संक्षिप्त मिलता है एवं उस समय का अन्य इतिहास भी प्रायः अंधकारमय है। अतः बहुत कुछ अन्वेषण करने पर भी हम इस चरित्र को मनोनुकूल नहीं बना सके। पुस्तक छोटी हो जाने के कारण उनके रचित 'व्यवस्था-कुलक' को भी सानुवाद इसमें प्रकाशित किया जा रहा है। साथ ही इसका महत्त्व इसलिये भी अधिक है कि आचार्यश्री की यही एकमात्र कृति हमें उपलब्ध है। इसकी एक पत्र की १ प्रति यति श्रीमुकुन्दचन्द्रजी के संग्रह में मिली थी व दूसरी जैसलमेर भंडार की प्रति से यति लक्ष्मीचन्द्रजी नकल कर के लाये थे। उससे हमने मिलान तो कर लिया था पर जैसलमेर भंडार की मूल ताड़पत्रीय प्राचीन प्रति के न मिल सकने के कारण पाठ-शुद्धि ठीक नहीं हो सकी है। पूज्य मुनिराज श्रीकवीन्द्रसागरजी ने जनसाधारण के लिये इसको अधिक उपयोगी बनाने के उद्देश्य से इसकी संस्कृत

छाया और भापानुवाद किया है। इसके लिये हम उनके आभारी हैं।

पूज्य श्री मणिधारीजी का चित्र या मूर्ति आदि न मिल सकने के कारण उनके समाधि-स्थान के चित्र को ही देकर संतोष करना पड़ता है। इसकी प्राप्ति हमें पूज्य श्रीजिनहरिसागरसूरीजी की कृपा से श्री केशरीचंदजी वोहरा दिल्लीनिवासी द्वारा हुई है जिसके लिये हम दोनों ही महानुभावों के आभारी हैं।

इस चरित्र का मुख्य आधार जिनपालोपाध्याय रचित 'गुर्वावली' है। अतः उपाध्यायजी का उपकार तो हम शब्दों द्वारा व्यक्त ही नहीं कर सकते। यह सूचित करते हमें हर्ष होता है कि इस ग्रन्थरत्न का संपादन पुरातत्त्वाचार्य श्रीजिनविजयजी जैसे सुप्रसिद्ध विद्वान् ने किया है और अब वह 'सिंघी जैन ग्रन्थमाला' से प्रकाशित होने जा रहा है।

हमने जिस समाधिरथान के चित्र का उल्लेख ऊपर किया है उसके सम्बन्ध में हम यहाँ यह सूचित कर देना उचित समझते हैं कि इस स्थान पर श्री मणिधारीजी के देहावसान के बाद स्तूप निर्माण हुआ था और वह स्तूप श्रीजिनकुशलसूरिजी के गुरु कलिकालकेवली श्रीजिनचन्द्रसूरिजी के समय में विद्यमान था। इसका प्रमाण हमें गुर्वावली से ही प्राप्त होता है। उसमें लिखा है कि श्रीजिनचन्द्रसूरिजी ने संवत् १३७५ में उसकी दो बार यात्रा की थी। इस समय वहाँ पर चरणपादुका या मूर्ति नहीं है।

इस पुस्तिका की प्रस्तावना श्रीकान्हेरे के सुप्रसिद्ध विद्वान्  
 पं० श्रीदशरथजी शर्मा M. A. महोदय ने लिखने की दृष्टा की  
 है। उन, हम उनके कृतज्ञ हैं। साथ ही पूज्य इतिहासतन्त्र  
 महोदयि जैनाचार्य श्री विजयेन्द्रमूरिजी ने इसके प्रुप्त-संशोधन  
 आदि कार्यों में हमारा हाथ बँटाया है इसके लिये हम उनके  
 भी आभारी हैं और आशा करते हैं कि विद्वानों का सहयोग  
 हमें बराबर मिलता रहेगा।

विनोद.

अगरचन्द्र नाहटा

मैत्रलाल नाहटा

ॐ

## प्रवेशिका

अन्तिम जैन तीर्थंकर श्री महावीर स्वामी एवं महात्मा बुद्ध प्रायः समकालीन थे। हृदयहीनता एवं दम्भ का विरोध कर इन महान् आत्माओं ने संसार को कारुण्य का उपदेश दिया था। परन्तु बौद्ध धर्म अब भारतवर्ष से विलीन हो चुका है। उसके विहार एवं मठ अब 'बुद्धं शरणं गच्छामि, धम्मं शरणं गच्छामि' 'सधं शरणं गच्छामि' के वाक्यों से प्रतिध्वनित नहीं होते। जिस धर्म का चक्रवर्ती महाराज अशोक एवं हर्षवर्धन ने प्रसार किया था उसके भारतीय अनुयायी अब अंगुलियों पर गिने जा सकते हैं। इस महान् परिवर्तन का कारण क्या धार्मिक अत्याचार था ? क्या पुण्यमित्र और शशाक की तलवारों ने इस धर्म का नाश कर दिया ? भारतीय इतिहास का पृष्ठ-पृष्ठ चिल्ला कर कहेगा कि नहीं। बौद्ध धर्म पर अन्त तक भारतीय राजाओं की कृपा रही, अन्त तक उसके लिये विहारों और संघारामों की सृष्टि होती रही। उसे किसी ने नष्ट नहीं किया, वह स्वयं ही नष्ट हो गया। वह विलासिता, शिथिलता, एवं उत्साहहीनता के बोझ से दब गया और फिर न उठ सका। सहजयान, वज्रयान, कुलयान आदि की सृष्टि कर, वह केवल

स्वयं अनाचार-ग्रस्त नहीं हुआ, अपितु दूसरों को भी अनाचार-ग्रस्त बना कर भारत के पतन का मुख्य कारण बना ।

ख्रिस्तीय आठवीं शताब्दी के आसपास जैनधर्म भी इसी पतन की तरफ किसी न किसी अंश में अग्रसर हो चुका था । आचार्य-प्रवर श्रीहरिभद्र के कथनानुसार कई जैन साधु मन्दिरों में रहते, उनके धन का उपभोग करते, मिष्टान्न, घृत, ताम्बूल आदि से अपने शरीर और जिह्वा को तृप्त करते और नृत्य, गीतादि का आनन्द लेते । यदि जैन धर्म के विषय में इनसे प्रश्न किया जाता तो इहकालीन कई धर्माध्यक्षों के अनुसार यही कह कर टाल देते कि यह विषय अत्यन्त सूक्ष्म है, श्रावकों की मति के लिये अगम्य है । केशलुञ्चन का इन्होंने परित्याग कर दिया था, स्त्रियों की संगति को ये सर्वथा त्याज्य नहीं समझते थे, धनी गृहस्थों का विशेष मान करते, और अन्य भी कई जिन शिक्षा के विरुद्ध आचरण किया करते थे । यदि प्रभावक चरित के कथन का विश्वास किया जाय तो उस समय के कई बड़े बड़े आचार्य भी इस आचारशैथिल्य से सर्वथा अस्पृष्ट नहीं थे । कन्नौज के सम्राट् नागभट्ट द्वितीय के गुरु सुविख्यात श्रीवप्पभट्टि हाथी पर सवार होते थे, उनके शिर पर चमर डुलाए जाते थे, और उनका राजाओं के समान सम्मान किया जाता था ।

श्रीहरिभद्राचार्य ने इस स्थिति को सुधारने का प्रयत्न किया । परन्तु उन्हें पूरी सफलता न मिली । स्वयं श्रीहरिभद्रा-

चार्य के प्राचीन स्थान चित्तौड़ में चैत्यवासियों का प्राबल्य था, और गुजरात तो एक प्रकार से उनका घर ही था। वे पहले चावड़ों के, और तदनन्तर चौलुख्यों के अनेक वर्ष तक गुरु रहे। उनका विरोध करना कोई साधारण कार्य न था। परन्तु पतन एवं बौद्धधर्म के समान मरण की तरफ अग्रसर होते हुए जिनो-पदेश का उद्धार करना आवश्यक था। अतएव चन्द्रकुल शिरोमणि श्रीजिनेश्वरसूरि ने चैत्यवासियों के प्रबलतम दुर्ग पतन में ही उनका विरोध किया और दुर्लभराज चौलुख्य की सभा में उन्हें परास्त कर, अपने गच्छ के लिये 'खरतर नामक' प्रसिद्ध विरुद्ध किया। नवाङ्ग वृत्तिकार सुविख्यात दार्शनिक श्रीअभयदेवसूरि ने अपनी पुस्तक-रचना एवं उपदेश द्वारा इस कार्य को अग्रसर किया। उनके शिष्य श्रीजिनवल्लभ अपने समय के अन्यतम विद्वान् थे। उन्होंने केवल अनेक ग्रन्थों की ही रचना नहीं की, अपितु समस्त राजस्थान, बागड और मालवा में विहार कर सत्य धर्म का उपदेश दिया और विधि-चैत्यों की स्थापना की। 'चर्चरी' के कथनानुसार श्री हरिभद्रा-चार्य के ग्रन्थों का मनन कर श्री जिनवल्लभसूरि ने विधिमार्ग का प्रकाशन किया (श्लोक १४)। जिन जिन बातों पर श्री हरिभद्राचार्य ने आक्षेप किया था वे सब विधिचैत्यों में वर्जित थी। यहाँ रात्रि के समय नृत्य और प्रतिष्ठा न होती, रंडियाँ न नाचतीं, और रात्रि समय स्त्रियाँ चैत्यों में प्रवेश न करतीं। जाति और ज्ञाति का यहाँ कदाग्रह न था, और लगुड रास

आदि वर्जित थे। श्रावक लोग जूने पहने यहा न आने थे, और न यहाँ ताम्बूल-चर्वण होता था। नृत्य, ह्याम, क्रीडा, तथा जिनोपदेश चिरुद्ध अन्य कार्य यहाँ सर्वथा निषिद्ध थे। चिनौड़, नगवर, नागौर, मरोट आदि विविचर्त्यों मे ये शिक्षाएं प्रशान्ति रूप मे लगा दी गई थीं।

श्रीजिनदत्तमूर्ति उनके मुख्य शिष्य थे। इनका चरित्र डम ग्रंथमाला में जीव ही प्रकाशित होगा। अतः यहाँ इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि ये अन्यन्त प्रभावशाली एवं निर्भीक उप-देष्टा थे। यदि सब धर्माचार्य इनके समान—

“अथ वा पणे मा विम वा पण्यत्तड ।

भामियत्वा हिया भामा नपस्य गुणकारिया ॥”

कह सकें तो क्या ससार में कभी धर्म की अवनति हो सकती है ?

इस लघुकाय पुस्तिका मे अगरचन्द्रजी एवं भँवरलालजी नाहटा ने इनके मुशिष्य एवं पट्टधर श्रीजिनचन्द्रमूर्ति का चरित्र दिया है। पुस्तक बड़ी खोज के साथ लिखी गई है। विद्वान् लेखकों की इस बात से मैं सर्वथा सहमत हूँ कि सूरिजी द्वारा प्रतिबोधित मदनपाल कोई सामान्य श्रावक मात्र नहीं बल्कि दिल्ली का राजा था।

चौहानों के अर्थान होने पर भी किसी अन्यवंशीय राजा के दिल्ली में राज्य करते रहना कोई आश्चर्य की बात नहीं है। विग्रहराज चतुर्थ ने आशिका अर्थात् हांसी को दिल्ली से पहिले जीता था, किन्तु संवत् १२२८ मे वहाँ भीमसिंह नामक चौहाने-

तर वंश का राजा राज्य करता था । पुराने विजेता अधिकतर विजितवंश को सर्वथा अधिकार-च्युत न करते थे । यदि राजा ने अधीनता स्वीकार कर ली और कर देना स्वीकार किया तो यह पर्याप्त समझा जाता था । विग्रहराज के शिलालेख में केवल इतना ही लिखा है कि उसने आशिका के ग्रहण से श्रान्त अपने यश को दिल्ली अर्थात् दिल्ली में विश्राम दिया । इसका यह मतलब हो सकता है कि दिल्ली के राजा ने विग्रहराज की अधीनता स्वीकार की । यह शिलालेख हमें यह मानने के लिये विवश नहीं करता कि चौहान-सम्राट् ने दिल्ली के राजवंश और राज्य को ही समाप्त कर दिया । श्री जिनपाल उपाध्याय का कथन सर्वथा स्पष्ट है, और उसके आधार पर हम निस्सङ्कोच कह सकते हैं कि सम्वत् १२२३ में योगिनीपुर अर्थात् दिल्ली में राजा मदनपाल का राज्य था । वे सर्वथा स्वतन्त्र थे या पराधीन— यह दूसरा विषय है और इसका निर्णय अन्यत्र उपलब्ध ऐतिहासिक सामग्री के आधार पर किया जा सकता है ।

इस सुन्दर पुस्तिका को लिखने के लिये अगरचन्दजी एवं भँवरलालजी दोनों ही वधाई एवं धन्यवाद के पात्र हैं । भगवान् से प्रार्थना है कि वे इसी तरह चिरकाल तक नवीन-नवीन एवं शोधपूर्ण पुस्तकों द्वारा हिन्दी साहित्य की वृद्धि करते रहे ।

बीकानेर

दशरथ शर्मा

चैत्र कृ० ३, १९९६





॥ ॐ ॥

# मणिधारी श्रीजिनचन्द्रसूरि

---

**जै**न समाज में सुप्रसिद्ध दादा सन्नक खरतरगच्छ के चार १ आचार्यों में श्रीजिनदत्तसूरिजी के अनन्तर मणिधारी श्रीजिनचन्द्रसूरिजी का पुनीत नाम आता है। ये बड़े प्रतिभाशाली विद्वान एवं प्रभावक आचार्य थे। केवल २६ वर्ष की अल्पायु पाकर इन्होंने जो कार्य किये वे सचमुच आश्चर्यजनक और गौरवपूर्ण हैं। गुरुवर्य श्रीजिनदत्तसूरिजी ने इनकी प्रतिभा की सच्ची परख की थी, उनके लोकोत्तर प्रभाव की गहरी छाप श्रीजिनचन्द्रसूरिजी के जीवन में अङ्कित पाई जाती है। मणिधारीजी का व्यक्तित्व महान एवं असाधारण था। इसी का सक्षिप्त परिचय इस लघु पुस्तिका में दिया जा रहा है।

---

१ श्रीजिनदत्तसूरि, चरित्रनायक श्रीजिनचन्द्रसूरि, श्रीजिनकुशलसूरि और युगप्रधान श्रीजिनचन्द्रसूरि—इनमें से पिछले दो आचार्यों का चरित्र हम पूर्व प्रकाशित कर चुके हैं। श्रीजिनदत्तसूरिजी का चरित्र शीघ्र ही प्रकाशित करेंगे।

## जन्म

जेसलमेर के निकटवर्ती विक्रमपुर १ में साह रासल नामक पुण्यवान श्रेष्ठ निवास करते थे। उनके देल्हणदेवी नामक सुशीला धर्मपत्नी थी। उसकी रत्नगर्भा कुक्षि से सं० ११६७ भाद्रवा शुक्ल ८ के दिन ज्येष्ठा नक्षत्र में हमारे चरित्रनायक श्रीजिनचन्द्रसूरिजी का जन्म हुआ था। ये आकृति के बड़े ही सुन्दर, सुढोल और लावण्यवान थे।

१ यह स्थान (पोहकरण) फलौवी में ४० मील पर अब भी डमी नाम से प्रसिद्ध है। यद्यपि इस समय यहाँ जनों की बस्ती एवं जैन मन्दिर विद्यमान नहीं हैं, फिर भी कई भग्नावशेष इनस्ततः पाये जाते हैं। यहाँ के मन्दिर की मूर्तियाँ जेसलमेर के मन्दिर में विराजमान की गई हैं।

कई लोग बीकानेर, जिमना नाम भी विक्रमपुर पाया जाता है, नाम साम्य की भ्रान्ति से आक्षेप करते हैं कि उस समय बीकानेर बना भी नहीं था, लेकिन वास्तव में यह बात अज्ञानमूलक है। स० १२९५ में सुमति-गणि कृत गणधरसार्वगतक बृहद्ब्रति से स्पष्ट है कि श्रीजिनचन्द्रसूरिजी ने यहाँ के वीरजिनेश्वर की प्रतिष्ठा की थी। भूत-प्रेतों को तिरस्कृत किया था। खरतरगच्छ पट्टावलीसंग्रह में प्रकाशित स० १५८२ की सूरि-परम्परा प्रशस्ति में लिखा है कि महामारि के उपद्रव को शान्त कर माहे-श्वगनुयायि लोगों को जैनधर्म का प्रतिबोध देकर जैनी बनाया था।

विक्रमपुर में श्रीजिनदत्तसूरिजी का बड़ा भारी प्रभाव था । सूरिजी ने बागड़ देश में 'चर्चरी १' नामक ग्रन्थ रच कर विक्रमपुर के मेहर, वासल आदि श्रावकों के पठनार्थ वह चर्चरी टिप्पनक विक्रमपुर भेजा । उससे प्रभावित हो कर सण्हिया के पुत्र देवधर ने चैत्यवास आम्राय का परित्याग कर सूरिजी को अजमेर से विक्रमपुर ला कर चातुर्मास कराया । सूरिजी के अमृतमय उपदेश से वहा पर बहुत से व्यक्ति प्रतिबोध पाये । बहुतों ने देशविरति और सबविरति धर्म स्वीकार किया । वहा के जिनालय में सूरिजी के कर-कमलों से महावीर भगवान की प्रतिमा स्थापित की गई ।

एक बार रासलनन्दन बाल्यवस्था में आपके निकट माता के साथ पधारे । बालक के शुभ लक्षणों को देख कर सूरिजी ने उसी समय उनके होनहार एवं प्रतिभासम्पन्न होने का निश्चय कर लिया और अपने ज्ञान-बल से इस बालक को अपने पट्ट के सर्वथा योग्य ज्ञात किया ।

## दीक्षा

विक्रमपुर में महती धर्म-प्रभावना कर युगप्रधान गुरुदेव

१ यह ग्रन्थ अपभ्रंश भाषा की ४७ गाथाओं में है । उपाध्याय श्रीजिनपालजी कृत वृत्ति सहित 'गायकवाड़ ओरियन्टल सिरीज' से प्रकाशित 'अपभ्रंश काव्यत्रयी' में मुद्रित हो चुका है ।

२ विशेष जानने के लिए गणधरसार्धशतक बृहद्वृत्ति देखनी चाहिए ।

अजमेर पधारं और वहीं सं० १२०३ के मिति फाल्गुन शुक्ल ६ के दिन श्रीपार्श्वनाथ विविचैत्य मे हमारे चरित्रनायक की दीक्षा हुई। आप असाधारण बुद्धिशाली और स्मरण शक्ति सम्पन्न थे, दो वर्ष के विद्याध्ययन मे ही आपकी प्रतिभा चमक उठी। सभी लोग इस लघुवयस्क सरस्वतीपुत्र मुनि की मेधा एव सूरिजी की परख की भूरि भूरि प्रशंसा करने लगे।

### आचार्य पद

सं० १२०४ के मिति वैशाख शुक्ल ६ को विक्रमपुर के श्री महावीर जिनालय मे श्री जिनदत्तसूरिजी ने स्वहस्त कमल

१ उ० श्री क्षमाकन्यागजी की पट्टावली में सं० १२११ लिखा है लेकिन वह ठीक नहीं जात होता। सं० १३१२ टीवाली के दिन प्रह्लादनपुर मे विरचित अभयनिलकोपाध्याय के द्वाधश्रयकाव्य श्रुति की प्रशस्ति में लिखा है—

नन्द्याचलचूलिकाचलमल चक्रेऽष्टवर्षोऽपि न

श्रीमान्द्रो जिनचन्द्रसूरि सुगुरु कण्ठीर वा भेषिम

य लोकोत्तररूपसपदमपेक्ष्य स्व पुलिन्दोपम

मन्वानोऽनुदधौ स्मरस्तदुचिताश्चाप गरान्यं वच ॥६॥

इसी मिति मे स्तम्भतीर्थ मे उ० श्रीचन्द्रतिलक रचित श्री अभय-कुमार चरित्र में भी ९ वर्ष की अवस्था मे सूरिपद मिलने का उल्लेख मिलता है। श्रीजिनपालोपाध्याय ने गुर्वाचिनी में भी वही बात लिखी है। पिछली अन्य पट्टावलियों में भी सूरिपद का समय सं० १२०५ ही लिखा है।

से इन प्रतिभाशाली मुनि को आचार्य पद प्रदान कर श्रीजिन-चन्द्रसूरिजी नाम से प्रसिद्ध किया। आचार्य पद महोत्सव इनके पिता साह रासल ने बड़े समारोह पूर्वक किया। श्रीजिन-दत्तसूरिजी की इन पर महती कृपा थी। उन्होंने स्वयं 'इन्हें जिनागम, मंत्र, तन्त्र, ज्योतिष आदि पढ़ा कर सभी विषयों में पारंगत विद्वान बना दिया। ये भी सर्वदा गुरु सेवा में दत्त-चित्त रहते थे।

## श्रीजिनदत्तसूरिजी का भावी संकेत

विनयी शिष्य की सेवा से युगप्रधान गुरुजी बड़े प्रसन्न थे। उन्होंने इन्हे गच्छ सञ्चालन एवं आत्मोन्नति की अनेक शिक्षाएँ दी थीं, उनमें एक शिक्षा बड़ी ही महत्त्व की थी कि जिसे हम गुरुसेवा का अमूल्य लाभ ही कह सकते हैं वह शिक्षा यह थी कि “योगिनीपुर-दिल्ली में कभी मत जाना।” क्योंकि दिल्ली में उस समय दुष्ट देव और योगिनियों का बहुत उपद्रव था एवं श्री जिनचन्द्रसूरिजी का मृत्युयोग भी उसी निमित्त से ज्ञात कर

---

१ बाल्ये श्रीजिनदत्तसूरि विभुभिर्ये दीक्षिताः शिक्षिता ।

दत्ताचार्यपद स्वयं निजपटे तै रेव सस्थापिता ॥ ६ ॥

श्रीमज्जिनचन्द्रसूरिगुर्वोऽपूर्वेन्दुविम्बोपमा ।

न प्रस्तास्तमसा कलकविकलाः क्षोणौ बभूवुस्ततः ॥ ७ ॥

[ शालिभद्र चरित्र, स० १२८५ में पूर्णभद्र कृत ]

इन्हें दिल्ली जानें का सर्वथा निषेध किया था। सूरिजी के भावी संकेत का तात्पर्य यह था कि ये इस सम्बन्ध में सतर्क रहें।

### गच्छनायक पद

संवत् १२११ मिति आपाढ शुक्ला ११ को अजमेर नगर में श्रीजिनदत्तमूरिजी महाराज स्वर्ग मिधारे। तभी से गच्छ सञ्चालन का मारा भार इनके ऊपर आ गया। ये भी बड़ी योग्यता पूर्वक इस महान् पद को निभाने लगे।

### विहार

संवत् १२१४ में श्रीजिनचन्द्रसूरिजी त्रिभुवनगिरि पधारे। वहा परमगुरु श्रीजिनदत्तमूरिजी द्वारा प्रतिष्ठित श्री

---

१ ग्यारहवीं शताब्दी के जैनाचार्य श्रीप्रद्युम्नमूरिजी ने त्रिभुवनगिरि के कदम गजा को जैन बनाया था। जो दीक्षित होकर श्रीचन्द्रमूरिजी के नाम से प्रसिद्ध हुए थे।

[ जैन साहित्य का संक्षिप्त इतिहास पृ० १६२-७ ]

म० १२६५ में रचित 'गणवरमार्चनतरु बृहद् वृत्ति' और 'गुर्वावली' में श्रीजिनदत्तमूरिजी के त्रिभुवनगिरि पधारण और वहा महाराजा कुमारपाल को प्रतिबोध देने का उल्लेख पाया जाता है।

हमारे समग्र के श्रीवादिदेवमूरिचरित्र में त्रिभुवनगिरि के दुर्ग में रक्त-वस्त्र बाढा को पराजय करने का वर्णन मिलता है।

शान्ति जिनालय के शिखर पर स्वर्ण दण्ड, कलश और ध्वजा को महा महोत्सव पूर्वक चढ़ाया गया। साध्वी हेमदेवी गणिनी को इन्होंने प्रवर्त्तिनी पद से विभूषित किया। वहां से विहार कर क्रमशः मथुरा पधारे। वहां की यात्रा कर सं० १२१७ के फाल्गुन शुक्ला १० के दिन पूर्णदेव २ गणि, जिनरथ, वीरभद्र, वीरनय, जगहित, जयशील जिनभद्र और नरपति ( श्री जिन-पतिसूरि ) को भीमपल्ली ४ के श्री वीरजिनालय में दीक्षा दी

गुर्वावली में श्री जिनपतिसूरिजी के नेतृत्व में स० १२४४ में एक सघ निकला उसमें त्रिभुवनगिरि से यशोभद्राचार्य के समीप अनेकान्त जयपताका, न्यायावतार आदि ग्रन्थों के पढ़ने वाले शीलसागर और सोमदेव स्थानीय सघ के साथ आकर पूज्यश्री के आज्ञानुसार सघ में सम्मिलित होने का उल्लेख है।

१ हमारे सम्पादित ऐतिहासिक जैन काव्य सग्रह के अन्तर्गत श्री जिन-पतिसूरि के गीतद्वय में दीक्षा स० १२१८ फाल्गुन कृष्ण १० लिखा है पर गुर्वा-वली में दो स्थानों में उपर्युक्त संवत् तिथि मिलने के कारण व प्रस्तुत जीवनी का मुख्य आधार गुर्वावली होने के कारण हमने भी उसी को स्थान दिया है।

२ स० १२४५ में लवणखेटक स्थान में श्रीजिनपतिसूरिजी ने इनको वाचनाचार्य पद से विभूषित किया था।

३ आपका सक्षिप्त परिचय हमारे 'ऐतिहासिक जैन काव्य सग्रह' के सार भाग पृष्ठ ९ में देखना चाहिए। गुर्वावली में आपका जीवन अति विस्तार से मिलता है, जिसे स्वतन्त्र रूप या गुर्वावली के अनुवाद के रूप में प्रकाशित किया जायगा।

४ वर्तमान भीलड़ी पालनपुर एजेन्सी में डीसा ग्राम से ८ कोश



गई। साह क्षेमन्धर को प्रतिबोध दिया। वहाँ से विहार कर सूरिजी मरुकोट ( मरोट ) पधारे। स्थानीय श्री चन्द्रप्रभ-स्वामी के विधिचैत्य पर साधु गोहृक कारित स्वर्णदण्ड, कलश व ध्वजारोपण किया गया। इस महोत्सव में साह क्षेमन्धर ने ५००) द्रम्म ( मुद्रा ) देकर माला ग्रहण की।

मरुकोट से विहार कर सूरि-महाराज सं० १२१८ में उच्च ( सिन्धु प्रान्तीय ) पधारे वहाँ ऋषभदत्त, विन ..... ( ) विनयशील. गुणवर्द्धन, मानचन्द्र नामक ५ साधु और जगन्नी, सरस्वती और गुणश्री नामक साध्वी त्रय को दीक्षा दी। इसी प्रकार क्रमशः सूरिजी के समीप और भी बहुत से व्यक्ति दीक्षित होते गये।

पश्चिम में हैं। विगेष जानने के लिए मुनि श्री कन्याणविजयजी का “जैन तीर्थ भीमपत्नी अने राममन्य” शीर्षक लेख पढ़ना चाहिए जो कि जैन युग सं० १९८५-८६ के भाद्रपद-क्रांतिक के अंक में छपा है।

१ ये पद्मप्रभाचार्य के पिता थे, जिनसे सं० १२४४ में आगापल्ली में श्रीजिनपतिसूरिजी ने शास्त्रार्थ किया था। इसका कुछ उल्लेख श्री जिनपतिसूरिजी के वादस्थल और विस्तार पूर्वक वर्णन गुर्वावली में मिलता है।

२ इन्हें भी लवणखेटक में उपर्युक्त पूर्णदेव गंगि के साथ सं० १२४५ में श्रीजिनपतिसूरिजी ने वाचनाचार्यपद दिया था।

३ सं० १२३४ में श्रीजिनपतिसूरिजी ने इन्हें महत्तरा पद दिया था।

संवत् १२२१ में सूरिजी सागरपाड़ा पधारे। वहा सा० गयधर कारित पार्श्वनाथ विधि चैत्य में देवकुलिका की प्रतिष्ठा की। वहा से अजमेर पधार कर स्वर्गीय गुरुदेव श्रीजिनदत्त-सूरिजी के स्तूप <sup>१</sup> की प्रतिष्ठा की। वहा से क्रमशः विहार करते हुए सूरिजी बब्बेरक पधारे। वहां वा० गुणभद्र <sup>२</sup> गणि, अभयचन्द्र, यशचन्द्र, यशोभद्र, देवभद्र और देवभद्र की भार्या को दीक्षा दी गई। आशिका ( हांसी ) नगरी मे नागदत्त को वाचना-चार्य पद दिया। महावन स्थान के श्री अजितनाथ विधिचैत्य की प्रतिष्ठा की। इन्द्रपुर के श्री शान्तिनाथ विधिचैत्य के स्वर्ण दण्ड, कलश और ध्वज की प्रतिष्ठा की। तगला ग्राम में वाचक गुणभद्र गणि के पिता महलाल श्रावक के वनवाये हुए श्री अजितनाथ विधिचैत्य की प्रतिष्ठा की।

सं० १२२२ में वादली नगर के श्री पार्श्वनाथ मन्दिर मे उपर्युक्त महलाल श्रावक कारित स्वर्ण दण्ड, कलश की प्रतिष्ठा की। अम्बिका-मन्दिर के शिखर पर स्वर्ण-कलश की प्रतिष्ठा

१ संवत् १२३५ में श्रीजिनपतिसूरिजी ने इस स्तूप की बड़े विस्तार से पुनः प्रतिष्ठा की थी।

२ सं० १२४५ में लवणखेटक में श्रीजिनपतिसूरिजी ने इन्हें वाचना-चार्य पद से सुशोभित किया था। इनके पिताका नाम महलाल श्रावक था जिनकी ऊरवाड़े हुई तगला और बोरसिदा की प्रतिष्ठा का उल्लेख ऊपर आ ही चुका है।

कर सूरि-महाराज ने लुपड़ी<sup>१</sup> की ओर विहार किया। लुपड़ी से नरपालपुर पधारे, वहां ज्योतिष शास्त्र के किञ्चित् अभ्यास से गर्विष्ठ एक ज्योतिषी से साक्षात्कार हुआ। ज्योतिष मन्त्रवर्णी चर्चा करते हुए सूरिजी ने उसे कहा कि चर. स्थिर. द्विस्वभाव इन ३ स्वभाव वाले लग्नों में किसी भी लग्न का प्रभाव दिग्वाजो। ज्योतिषी के निरुत्तर होने पर सूरिजी ने वृष लग्न के १२ से ३० अंशों तक के समय मार्गशीर्ष सुदूर्न में श्री पार्श्वनाथ मन्दिर के समक्ष एक शिला १७६ वर्ष तक स्थिर रहने की प्रतिज्ञा से अमावस्या के दिन स्थापित कर उस ज्योतिषी को जीत लिया। ज्योतिषी लज्जित होकर चला गया। श्रीजिनपालोपाध्याय गुर्वावली में लिखते हैं कि वह शिला अब (रचनाकाल सं० १३०५) तक वहां विद्यमान है।

### पद्मचन्द्राचार्य से शास्त्रार्थ

वहां से विहार कर श्रीजिनचन्द्रसूरिजी पुनः लुपड़ी पधारे। वहां किसी दिन मुनि मण्डली सहित लघुवयस्क सूरि महाराज

---

१ श्रीजिनचन्द्रसूरिजी ने वहां पधार कर बहुत से व्यक्तियों को मन्त्रवक्त्री, वेद्यविगर्त, सर्वविरति बनाया था। एवं श्री पार्श्वनाथ स्वामी और श्रीकृष्णम-  
ठेय प्रभु के चैत्यद्वय की प्रतिष्ठा की थी। श्रीजिनचन्द्रसूरिजी के शिष्य श्रीजिनचन्द्ररोसाध्याय भी वही के थे। इस स्थान के नाम पर नरतरगच्छ की रुद्रदीय शाखा इन्हीं से प्राप्त हुई।

को अपने पास से होकर वहिर्भूमि जाते देख भात्सर्यवश पद्म-चन्द्राचार्य नामक चैत्यवासी ने उनसे पूछा कहिये ! आचार्यजी आप आनन्द में हैं ?”

सूरि—हाँ । देवगुरु के प्रसाद से आनन्द में हूँ ।

पद्म०—आप आज कल किन किन शास्त्रों का अभ्यास करते हैं ?

यह सुन कर साथ में रहे हुए मुनि ने कहा —

पूज्यश्री आज कल “न्याय कन्दली” १ का चिन्तन करते हैं ।

पद्म०—क्यों, आचार्यजी आपने तमोवाद का चिन्तन कर लिया है ?

सूरिजी—हाँ, तमोवाद प्रकरण देखा है ।

पद्म०—आपने उसका अच्छी तरह से मनन किया है ।

सूरिजी—हाँ, कर लिया है ।

पद्म०—अन्धकार रूपी है या अरूपी, एवं उसका रूप कैसा है ?

सूरिजी—अन्धकार का स्वरूप कैसा ही हो, पर उस पर वाद करने का यह समय नहीं है । वाद विवाद तो राजसभा

१ यह ग्रन्थ श्रीधर का बनाया हुआ है । इस पर हर्षपुरोयगच्छ के मलधारी श्रीदेवप्रभसूरि ( १३ वीं शताब्दी ) के शिष्य नरचन्द्रसूरि ने टिप्पण लिखा है । एवं उन्हीं की परम्परा में राजशेखरसूरि ( १५ वीं शताब्दी ) ने पञ्जिका बनाई है ।

में प्रधान सभ्यों के समक्ष होना ही उचित है। नीति और प्रमाणों द्वारा अपने अपने पक्ष का समर्थन करके वस्तु स्वरूप का तभी विचार हो सकता है। यह निश्चित है कि स्वपक्ष स्थापना करने पर भी वस्तु अपना स्वरूप नहीं छोड़ती।

पद्म - पक्ष स्थापनामात्र से वस्तु अपना स्वरूप छोड़े या न छोड़े पर परमेश्वर तीर्थङ्करों ने 'तम' को द्रव्य कहा है, यह सर्व सम्मत है।

सूरिजी—अन्वकार को द्रव्य मानना कौन अस्वीकार करता है ?

पूज्यश्री ने वार्त्तालाप के समय ज्यों ज्यों शिष्टता और विनय प्रदर्शन किया त्यों त्यों पद्मचन्द्राचार्य अहङ्कार में उन्मत्त हो गए। कोप के आवेग से उनके नेत्र लाल हो गए, शरीर कांपने लगा और कहने लगे—“जब मैं प्रमाण रीति से ‘अन्वकार द्रव्य है’ इसे स्थापित करूँगा तब तुम क्या मेरे सामने ठहर सकोगे।”

सूरिजी—किस की योग्यता है और किसकी नहीं, यह तो मौका पड़ने पर राजसभा में स्वतः विद्रित हो जायगा। पशु-प्रायों की जंगल ही रणभूमि है, आप हमें लघुचयस्क समझ कर अपनी शक्ति को अधिक न बवारिये ! मालूम है ? छोटे शरीर वाले सिंह की दहाड़ सुन कर पर्वताकृति गजराज भी डर जाते हैं।

इन दोनों आचार्यों का विवाद सुन कर कौतुक देखने के लिए वहाँ कितने ही नागरिक एकत्र हो गए। दोनों पक्ष के

श्रावक अपने अपने आचार्य का पक्ष लेकर एक दूसरे को परस्पर अहंकार दर्शाने लगे। बात बढ़ते बढ़ते राजसभा में शास्त्राथ निश्चित हुआ। निश्चित समय पर शास्त्रार्थ प्रारम्भ हुआ। श्रीजिनचन्द्रसूरिजी ने बड़ी विद्वता के साथ विपक्षी के युक्ति और प्रमाणों को रद्द कर स्वपक्ष का स्थापन किया।

पद्मचन्द्राचार्य शास्त्रार्थ में परास्त हो गये। राज्याधिकारियों ने समस्त जनता के समक्ष श्रीजिनचन्द्रसूरिजी को जयपत्र समर्पण किया। चारों ओर से सूरिजी की जयध्वनि प्रस्फुटित हुई। सूरिजी की विद्वत्ता एवं सुविहित मार्ग की बड़ी प्रशंसा हुई। श्रावक लोगों ने इस विजय के उपलक्ष्य में बड़ा महोत्सव किया। सूरिजी के भक्त श्रावकों की 'जयतिहट्ट' नाम से प्रसिद्धि हुई और पद्मचन्द्राचार्य के श्रावक 'तर्कहट्ट' कहलाने लगे। इस प्रकार यशस्वी आचार्य श्रीजिनचन्द्रसूरिजी ने कई दिन तक वहां ठहर कर सिद्धान्तोक्तविधि से अच्छे सथवाड़े के साथ वहां से प्रस्थान किया।

### म्लेच्छोपद्रव से संघ रक्षा

क्रमशः विहार करते हुए मार्ग में बोरसिदान ग्राम के समीप संघ ने पडाव डाला। उसी समय वहां म्लेच्छों के आने की खबर लगने से सथवाड़े के लोग भयभीत होने लगे। संघ को म्लेच्छों के भय से व्याकुल देख कर सूरिजी ने कहा—'आप लोग आकुल क्यों हो रहे हैं ?'

साथवाले लोगों ने कहा—भगवन्! देखिये, वह म्लेच्छों की सेना आ रही है, इस दिशा में आकाश धूलि से आच्छादित हो रहा है। वह देखिये—सैनिकों का कोलाहल भी सुनाई देता है।

पूज्यश्री ने सावधान होकर सब से कहा—महानुभावो! धैर्य रखो अपने ऊँट, बैल आदि चतुष्पदों को एकत्र कर लो। प्रभु श्रीजिनदत्तसूरिजी सब का भला करेंगे।

तत्पश्चात् पूज्यश्री ने मन्त्रध्यानपूर्वक अपने दण्ड से संघ के चारों ओर कोट के आकार वाली रेखा खींच दी। साथवाड़े के लोग गोष्ठी में घुस गये। उन लोगों ने घोड़ों पर चढ़े हुए हजारों म्लेच्छों को पडाव के पास से जाते हुए देखा परन्तु म्लेच्छों ने सब को नहीं देखा, वे केवल कोट को देखते हुए दूर चले गये। सब लोग निर्भय होकर चले, और क्रमशः दिल्ली के समीप जा पहुँचे।

सूरिजी के पधारने की सूचना पाकर दिल्ली के ठक्कुर लोहट, सा० पाल्हण, मा० कुलचंद्र, सा० महीचंद्र आदि सब के मुख्य श्रावक बड़े समारोह के साथ सूरिजी के चन्द्रनार्थ सन्मुख चल पड़े।

## महाराजा मदनपालः प्रतिबोध

दिल्ली नगर के प्रधान लोगों को सुन्दर वेशभूषा से अलंकृत, सपरिवार सवारियों पर आरूढ़ होकर नगर से बाहर जाते

१ पिछले पट्टावलिकारों ने मदनपाल को श्रीमाल श्रावक लिखा है परन्तु गुर्वावली से स्पष्ट है कि उस समय वे दिल्ली के महाराजा थे । यद्यपि भारतीय ऐतिहासिक ग्रन्थों में उनका उल्लेख नहीं पाया जाता पर तैवर राजवशावली शुद्ध एवं परिपूर्ण उपलब्ध नहीं है तथा उस समय दिल्ली के शासक कौन थे इसके जानने के लिए भी कोई मुद्रादि साधन उपलब्ध नहीं है अतएव गुर्वावली तिमिराच्छन्न भारतीय इतिहास पर एक नवीन प्रकाश डालती है । गुर्वावलीकार के कथन में सन्देह का कोई भी कारण नहीं हो सकता क्योंकि इसके कर्ता उ० जिनपाल की दीक्षा स० १२२५ में हुई थी अतः हमारे चरित्रनायक के साथ में रहने वाले गीतार्थों के मुग से छनो हुई सत्य घटना को ही सकलित किया गया है । उपाध्यायजी चरित्रनायक के प्रशिष्य थे एवं उनका समय भी अति सन्निकट अर्थात् जिनचन्द्रसूरिजी के स्वर्गवास के दो वर्ष पश्चात् ही आपकी दीक्षा हुई थी । इसलिए पट्टावलिकारों का कथन यहाँ तक ग्राह्य हो सकता है कि मदनपाल के आग्रह से सूरिजी दिल्ली पधारे थे और वह आपका अत्यन्त भक्त था अतः उसे श्रावक शब्द से सम्बोधित कर दिया है ।

क्षमाकल्याणजी की पट्टावली में उस समय दिल्ली का शासक पातसाह लिखा है पर वह सर्वथा भ्रान्तिमूलक ही है ।



हुए देख कर राजप्रासाद में बैठे हुए महाराजा मदनपाल ने विस्मय पूर्वक अपने प्रधान अधिकारियों से पूछा—“ये नगर के विशिष्ट लोग बाहर क्यों जा रहे हैं ?” उन्होंने कहा—“राजन् ! अत्यन्त सुन्दर आकृतिवाले अनेक शक्ति सम्पन्न इनके गुरु महाराज आये हैं, ये लोग भक्तिवश उनके स्वागतार्थ जाते हैं।

कौतूहलवश महाराजा के मन में भी सूरिजी के दर्शनो की उत्कण्ठा जागृत हुई और राजकर्मचारियों को आज्ञा दी कि—हमारे पट्ट घोड़े को सजाओ और नगर में घोषणा कर दो कि सब राजकीयपुरुष तैयार होकर शीघ्र हमारे साथ चलें।

राजाज्ञा पाकर हजारों सुभट लोग अश्वावृद्ध होकर नरपति के पीछे हो गये। महाराजा मदनपाल श्रावक लोगों से पूर्व ही ससैन्य सूरिजी के निकट जा पहुँचे।

साथ वाले लोगों ने राजा साहब को प्रचुर भेंट देकर सत्कृत किया। पूज्यश्री ने भी अवृत्तमय धर्म देशना दी। राजा साहब ने उपदेश श्रवण कर कहा—महाराज ! आपका शुभागमन किस स्थान से हुआ है ?” पूज्यश्री ने कहा—इस समय हम रुद्रपत्नी से आ रहे हैं। राजा साहब ने कहा—आचार्य भगवन् ! उठिये और अपने चरणविन्यास से मेरी नगरी को पवित्र कीजिये।

पूज्यश्री, श्रीजिनदत्तसूरिजी के दिये हुए उपदेश को स्मरण कर कुछ भी न बोले। तब उन्हें मौन देख कर पुनः राजा साहब ने कहा—“आचार्य महाराज ! आप चुप क्यों हैं ? क्या

मेरे नगर में आपका कोई प्रतिपक्षी है ? या आपके परिवार योग्य अन्नजल की प्राप्ति में असुविधा है। अथवा और कोई कारण है ? जिससे मार्ग में आये हुए मेरे नगर को छोड़ कर आप अन्यत्र जा रहे हैं।

सूरिजी ने कहा—“राजन् ! आपका नगर प्रधान धर्मक्षेत्र है” परन्तु..... ..

राजा— तो फिर उठिये और शीघ्र दिल्ली पधारिये। आप विश्वास रखिये कि मेरी नगरी में आप की ओर कोई अङ्गुली भी नहीं उठा सकेगा। दिल्लीश्वर मदनपाल के विशेष अनुरोधवश श्रीजिनदत्तसूरिजी की दिल्लीगमन निषेधात्मक आज्ञा का उल्लंघन करते हुए उन्हें मानसिक पीडा अनुभव होती थी, फिर भी भवितव्यता के वश से दिल्ली की ओर प्रस्थान करना पड़ा।

आचार्यश्री के प्रवेशोत्सव के उपलक्ष्य में सारा नगर बन्दर-वाल, तोरण और पताकाओं से सजाया गया। २४ प्रकार के वाजित्र वजने लगे। भट्ट लोग विरुदावली गाने लगे। सधवा स्त्रियाँ मङ्गल गीत गाने लगीं। स्थान स्थान पर नृत्य होने लगा। लाखों मनुष्यों को अपार भीड़ के साथ महाराजा मदनपाल सूरिजी की सेवा में साथ चल रहे थे। प्रवेशोत्सव का यह दृश्य अभूतपूर्व था। लोगों का हृदय आनन्द से परिपूर्ण हो गया।

सूरिजी के पधारने पर नगरवासियों में नवजीवन का संचार होने लगा। उनके उपदेशामृत की झड़ी से अनेक लोगों

की सन्तत आत्मायें शान्ति-लाभ करने लगीं। नृपति मदन-पाल भी अनेक समय दर्शनार्थ आकर मूरिजी के उपदेशों का लाभ उठाते थे। द्वितीया के चन्द्रमा की भांति उनका धर्म-प्रेम दिनोदिन बढ़ने लगा।

### श्रे० कुलचन्द्र पर गुरु-कृपा

श्रीजिनचन्द्रमूरिजी को दिल्ली में रहते हुए कई दिन बीत गए। एक दिन अपने अत्यन्त भक्त श्रावक कुलचन्द्र को धनाभाव के कारण दुर्बल देख कर दयालु आचार्य महाराज ने कुंकुम कस्तूरी, गोरोचन आदि सुगन्धित पदार्थों से लिखे हुए मन्त्राक्षर युक्त यन्त्रपट्ट कुलचन्द्र को देते हुए कहा—इस यन्त्रपट्ट को अपनी मुष्टि प्रमाण वासश्लेष से प्रतिदिन पूजना, यन्त्रपट्ट पर चढ़ा हुआ वह निर्माल्य वासश्लेष पारे आदि के संयोग से सोना हो जायगा। कुलचन्द्र भी सूरिजी की वतलाई हुई विधि के अनुसार पूजा करने लगा जिससे वह अल्पकाल में करोड़पति हो गया।

### देवता प्रतिबोध

एक दिन सूरिमहाराज दिल्ली के उत्तरीय दरवाजे से बहिर्भूमि जा रहें थे। उस दिन महानवमी अर्थात् नवरात्रि का अन्तिम दिन था। मार्ग में जाते हुए मास के लिये लड़ते हुए दो मिथ्यादृष्टि देवताओं को देखा। दयालु हृदयवाले आचार्य

महाराज ने उनमे से अतिवल नामक देवता को प्रतिबोध दिया । वह भी उपशान्त होकर सूरिजी से कहने लगा—आपके उपदेश से मैंने मासवलि का परित्याग कर दिया है परन्तु कृपा कर के मुझे रहने के लिए कोई स्थान बतलावें जहाँ रहता हुआ मैं आपके आदेश का पालन कर सकूँ ।

सूरिजी ने कहा—अच्छा, श्रीपार्श्वनाथ विधिचैत्य मे प्रवेश करते समय दक्षिणस्तम्भ मे जाकर निवास करो ।

देवता को इस प्रकार आश्वासन देकर सूरिजी पौषधशाला मे पधारे । उन्होंने सा० लोहड, सा० कुलचन्द्र, सा० पाल्हण आदि प्रधान श्रावकों को सारी बात कह सुनाई और श्रीपार्श्वनाथ मन्दिर के दक्षिणस्तम्भ में अधिष्ठायक की मूर्ति उत्कीर्ण करने का संकेत किया । श्रावकों ने भी वैसा ही किया, सूरिजी ने बड़े विस्तार से उसकी प्रतिष्ठा कर अधिष्ठायक का नाम “अतिवल” प्रसिद्ध किया, श्रावक लोग अधिष्ठायक की अच्छे अच्छे मिष्ठान्नों द्वारा पूजा करने लगे और अतिवल भी उनके मनोवांछित पूर्ण करने लगा ।

## स्वर्गवास

इस प्रकार धर्म प्रभावना करते हुए सूरिजी ने अपना आयु शेष निकट जान कर सं० १२२३ के द्वितीय भाद्रपद कृष्णा १४ को चतुर्विध संघ से क्षमतक्षामणा की और अनशन आराधना के

साथ स्वर्ग सिधारे । अन्त समय मे श्रावकों के समक्ष आप श्री ने एक भविष्यवाणी की कि “शहर के जितनी ही दूर हमारा देह-संस्कार किया जायगा, नगर की आबादी उतनी ही दूर तक बढ़ जायगी” इन शब्दों को स्मरण कर श्रावक लोग सूरिजी की पवित्रदेह को बड़े समारोह के साथ अनेक मण्डपिकाओं से मण्डित निर्यात-विमान मे विराजमान कर नगर के बहुत दूर ले गए । चन्दन कर्पूरादि सुगन्धित द्रव्यों से सूरि-महाराज की अन्त्येष्टिक्रिया की गई ।

सूरिजी की देह के अन्तिम दर्शन करते हुए श्री० गुणचन्द्र गणि पूज्यश्री के गुण वर्णनात्मक काव्यों से इस प्रकार स्तुति करने लगे—

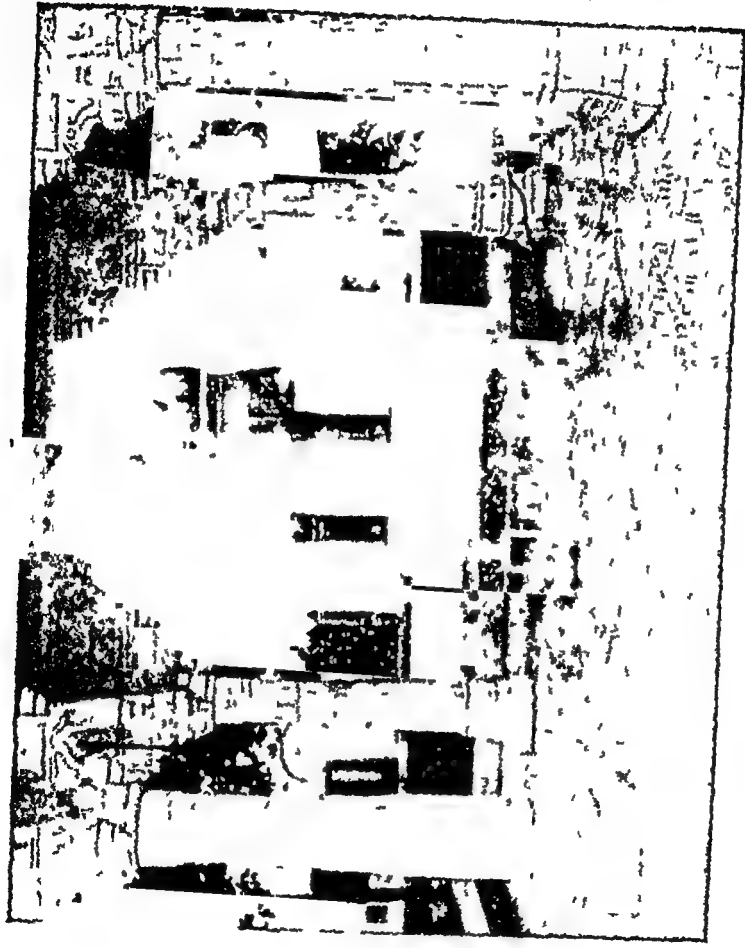
१ पट्टावलियों में लिखा है कि आपका स्वर्गवास योगिनी के छल से हुआ था ।

२ यह स्थान अभी दिल्ली में कुतुब मीनार के पास ‘बड़े टादाजी’ के नाम से प्रसिद्ध है । पट्टावलियों में इस स्तूप का अविष्टाता खोडिया ( खज ) क्षेत्रपाल लिखा है ।

३ स० १२३२ फाल्गुण शुक्ल १० विक्रमपुर में इनके स्तूप की प्रतिष्ठा श्रीजिनपतिसुग्गि ने की थी । गणवरसार्धशतक की ब्रह्मवृत्ति में इनका परिचय इस प्रकार मिलता है—

ये पहले श्रावक थे, एक तुर्क ने इनकी हस्तरेखा देख “यह अच्छा भण्डारी होगा” जात कर भाग जाने की मम्मावना से इन्हे दृढ़ जजीर से

मणिधारी श्रीजिनचन्द्रसरि



मणिधारीजी का समाधिस्थल, दिल्ली



( १ )

चातुर्वर्ग्यमिदं मुदा प्रयतते तद्रूपमालोकितु

मादृक्ष्याच्च महर्षयस्तव वचः कर्तुं सदैवोद्यता ।

शक्रोऽपि स्वयमेव देवमहितो युष्मत्प्रभामीहते

तत्किं श्रीजिनचन्द्रसूरिसुगुरो म्वर्गं प्रति प्रन्थितः ॥

अर्थात्—हे सुगुरु श्रीजिनचन्द्रसूरि महाराज । चारों वर्णों के लोग सदैव आपका दर्शन करने के लिए सहर्ष प्रयत्न किया करते थे । वैसे ही हम माधु लोग भी हमेशा आपकी आज्ञा के लिए प्रस्तुत रहा करते थे फिर भी आप हम निरपराधी लोगों को छोड़ कर स्वर्ग सिंधार गए इसका एक मात्र कारण हमारी समझ में यही आता है कि देवताओं के साथ स्वयं देवराज शक्रेन्द्र भी बहुत समय से आपके दर्शनों की प्रतीक्षा कर रहा होगा ।

( २ )

साहित्य च निरर्थक समभवज्जिर्लक्षणं लक्षण

मन्त्रैर्मन्त्रपरैरभूयत तथा कैवल्यमेवाश्रितम् ।

बांध दिया । इस विपत्ति के समय इन्होंने लक्ष नघनारमन्त्र का जाप किया जिसके प्रभाव से जजीर टूट गई और रात्रि के पिछले प्रहर में बन्धन मुक्त हो कर किसी ब्रह्मा के घर पहुँचे । उसने मदय हो कर इन्हें कोठी में छिपा लिया । तुरुष्क के बहुत रोजने पर भी ये उनके हाथ न लगे और रात्रि के समय निकल कर स्वदेश लौटे । इस विपत्ति के समय वैराग्य पाकर इन्होंने श्रीजिनदत्तमूर्तिजी महाराज से दीक्षा ग्रहण की थी ।



केवलया जिनचन्द्रसूरि वरते स्वर्गाधिरोहे हहा !

सिद्धान्तः स्फुरिष्यते किमपि यत्तन्नैव जानीमहे ॥

अर्थान्—आपके स्वर्ग पधारने पर साहित्य शास्त्र निरर्थक हो गया. अर्थान् आप ही उसके पारगामी मर्मज्ञ थे, वैसे ही न्यायशास्त्र लक्षण शुन्य हो गया, आपका आश्रय टूट जाने से निराधार मन्त्रशास्त्र के मन्त्र परस्पर में मन्त्रणा करते हैं कि अब हमें किस का सहारा लेना चाहिए ? अर्थान्—आप मन्त्र-शास्त्र के भी अद्वितीय ज्ञाता थे। इसी प्रकार ज्योतिष की अवान्तर मंद रमल-विद्या ने आपके वियोग में वैराग्य वश मुक्ति का आश्रय लिया है, अब सिद्धान्त शास्त्र क्या करेंगे ? इसका हमें पता नहीं है।

( ३ )

प्रमाणिकैराधुनिकैर्विषयः प्रमाणमार्गं स्फुटमप्रमाणः ।

हहा ! महाकष्टमुपस्थितं ते स्वर्गाधिरोहे जिनचन्द्रसूरिः ॥

अर्थान्—आधुनिक मीमांसकों के लिये प्रमाण मार्ग अप्रमाण स्वरूप हो गया है क्योंकि उसका विशेषज्ञ अब पृथ्वी पर नहीं रहा, श्रीजिनचन्द्रसूरिजी ! आपके स्वर्गाधिरोहण से सब शास्त्रों में बड़ी हलचल मच गई है।

इस प्रकार गुरु गुण गान करते करते श्रीगुणचन्द्रगणि अधीर हो उठे। उनकी आंखों से अश्रुओं की धारा बहने लगी। इसी तरह अन्य साधु लोग भी गुरुस्नेह से विह्वल होकर परस्पर में

पराङ्मुख हुए अश्रुपात करने लगे। उपस्थित श्रावक लोग भी वस्त्राञ्चल से नेत्र ढाँक कर हिचकियां लेने लगे। इस समय चारों ओर मानो शोकसागर उमड़ पड़ा था। गुरुविरह के अतिरिक्त किसी को अन्य कोई बात नहीं सूझ पड़ती थी। सच-मुच इस अप्रिय दृश्य को देख कर अन्य दर्शक लोग भी अपने हृदय को थामने में असमर्थ हो गए।

इस असमञ्जस अवस्था को देख कर कुछ क्षण के पश्चात् श्री गुणचन्द्रगणि स्वयं धैर्य धारण करके साधुओं के प्रति इस प्रकार कहने लगे—

“हे महासत्त्वशील साधुओ। आप लोग अपनी आत्मा को शान्ति दें, खोया हुआ रत्न अब लाख उपाय करने पर भी हाथ नहीं आने का। पृज्यश्री ने अपने अन्तिम समय में मुझे आवश्यक कर्तव्यों का निर्देश किया है, मैं उनकी आज्ञानुसार वैसा ही कलंगा कि जिस से आप सब को सन्तोष हो। इस समय आप लोग मेरे साथ साथ चले आइए।”

इस समय दाह संस्कार सम्बन्धी क्रिया-कलाप को सम्पादित कर सर्वादरणीय भाण्डागारिक श्रीगुणचन्द्र गणि पौषधशाला में पधारे। वहाँ कुछ दिन ठहर कर चतुर्विध संघ के साथ बज्जे-रक की ओर विहार कर दिया।

श्रीगुणचन्द्र गणि ने बज्जेरक जाकर श्रीजिनचन्द्रसूरिजी की आज्ञानुसार नरपति मुनि को श्रीजिनदत्तसूरिजी के वृद्ध शिष्य



महोत्सव में देशान्तरीय संघ'भी सम्मिलित हुआ था। इसी समय श्रीजिनचन्द्रसूरिजी के शिष्य वाचनाचार्य जिनभद्र भी आचार्य पद देकर श्रीजिनभद्राचार्य नामक द्वितीय श्रेणि के आचार्य बनाये गये।

## पट्टावलियों की दो विशेष बातें

मणिधारीजी का उपर्युक्त चरित्र उपाध्याय श्री जिनपाल रचित गुर्वावली के आधार पर लिखा गया है। पट्टावलियों में और भी कई बातें पाई जाती हैं, जिन में बहुत सी बातें भ्रान्त और असंगत ज्ञात होती हैं। ऐतिहासिक दृष्टि से निम्नोक्त दो बातें कुछ तथ्यपूर्ण प्रतीत होने से यहाँ लिखी जाती हैं -

१ श्रीजिनचन्द्रसूरिजी ने महत्तियाण ( मन्त्रिदलीय ) जाति की स्थापना की थी, जिन की परम्परा में से कई व्यक्तियों ने पूर्वदेश के तीथा का उद्धार कर शासन की बड़ी भारी सेवा की है। सत्रहवीं शताब्दी पर्यन्त इस जाति के बहुत से घर अनेक स्थानों में थे पर इसके बाद क्रमशः उसकी संख्या घटन

---

जिनपतिसूरिजी के उपर्युक्त प्रसंग से मानदेव के मन्त्रिसम्पन्न और जिनपतिसूरिजी पर असीम स्नेह का पता लगता है। स० १२३३ क जा० ५४ में कन्यानयन ( करनाल ? ) स्थान में इन्हीं मानदेव ने श्री महाशिव स्वामी का प्रतिमा श्रीजिनपतिसूरिजी से स्थापित करवाई थी। इस प्रतिमा का विशेष वर्णन जिनप्रभसूरि रचित विविध-तीर्थकल्प के कन्यानयन कल्प को देखना चाहिए।

घटते नाम शेष हो गई है। इस जाति के विषय में हमारा एक स्वतन्त्र लेख 'ओसवाल नवयुवक' के वर्ष ७ अंक ६ में प्रकाशित हुआ था, पाठकों के अवलोकनार्थ उसे परिशिष्ट में दिया जाता है।

२ श्रीजिनचन्द्रसूरिजी के ललाट में मणि थी और उसी के कारण उनकी प्रसिद्धि 'मणिधारीजी' के नाम से हुई है। इस मणि के विषय में पट्टावलीकारों का कहना है कि सूरिजी ने अपने

१ मवत् १४१० की गजगृह प्रगति में इसका उल्लेख इस प्रकार पाया जाता है :—

तत पर श्रीजिनचन्द्रमृग्विभूव निमगुणास्तभूरि  
चिन्तामणिर्भालतले यदीयेऽध्युवाम वामादिव भाग्यलभ्या ॥२॥

( प्राचीन-जैन-लेख-संग्रह, लेखांक ३८० )

इसके पीछे का उल्लेख हमारे 'ऐतिहासिक-जैन-काव्य-संग्रह' पृ० ४६ में प्रकाशित खरतरगच्छ पट्टावली में, जो कि श्रीजिनभद्रसूरिजी के समय में रची गई थी, मिलता है—

“नरमणि ए जासु निलाङ्गि, मन्हुलड जेम गयणहि दिणदो”

'खरतरगच्छ पट्टावली संग्रह' में प्रकाशित 'भूरि परम्परा प्रगति' एवं पट्टावली त्रय में इसका वर्णन विशेष रूप से मिलता है। लगभग उमी प्रकार का वर्णन श्रीललितविजयजी विरचित यशोभद्रसूरि चरित्र में उन आचार्यश्री के सम्यन्व में पाया जाता है। इसकी समानता बतलाने के लिए उस ग्रन्थ से आवश्यक अवतरण यहाँ दिया जाता है —

अन्त समय में श्रावक लोगों को कहा था कि अग्नि संस्कार के समय हमारी देह के सन्निकट दूध का पात्र रखना ताकि वह मणि निकल कर उसमें आ जायगी पर श्रावक लोग गुरु विरह से व्याकुल होने के कारण ऐसा करना भूल गए और भवितव्यता से वह मणि एक योगी के हाथ लगी। श्रीजिनपतिसूरिजी ने उस योगी की स्थम्भित प्रतिमा को प्रतिष्ठित कर उससे वह मणि पुनः प्राप्त कर ली थी।

मणिधारी श्रीजिनचन्द्रसूरिजी बड़े प्रतिभाशाली थे अतः खगतरगच्छ मे प्रति चौथे पट्टधर का नाम यही रखा जाने की परिपाटी इन्हीं से प्रचलित होने का पट्टावलियों में उल्लेख है।

---

“श्री आचार्य महाराज इस उक्तान्त को सुन कर अपने ज्ञान का उपयोग देकर बोले—मेरी ६ महीने की आयु बाकी है, मेरे मस्तर में एक प्रभावशाली मणि है उसे लेने के लिए यह ( योगी ) कष्ट उपाय करेगा परन्तु तुम पहले ही मेरे मृतक शरीर में से उस मणि को निकाल लेना और पीछे अग्नि संस्कार करना—इस तरह की सूचना भक्त श्रावक को देकर विव्रम स० १०३९ में आचार्य यशोभद्र समाधि पूर्वक स्वर्गाष्ट हुआ। आचार्यश्री का स्वर्गगम सुन कर वह योगी तत्काल अपनी स्वार्य मिट्टि के लिए वहां आ पहुँचा। उसने आचार्य महाराज के मस्तर की मणि लेने के लिए अनेक प्रयत्न किए। परन्तु जब उसे मालूम हुआ कि मणि निकाला गया और वह मुझे किसी तरह कोई उपाय करने पर नहीं मिलेगा तब निराशा के दुःख को न सहन करते हुए उस योगी का हृदय फट गया।”

सं० १२६४ में अंचलगच्छ के आचार्य श्रीनहंन्द्रसूरि विरचित शतपदी ग्रन्थ के भाषान्तर पृष्ठ १५२ में "श्रीजिनचन्द्रसूरि नी आचरणाओ" रूप से तीन वांते लिखी हैं, वे इस प्रकार हैं,—

१ एक पट्ट ना नव्वत्त १ लोकपाल. यक्ष. वक्षिणी. क्षेत्रदेवता, चैत्यदेवता. शासनदेवता. नायर्मिन्देवता. भद्रकदेवता. आगन्तुक देवता तथा ज्ञान. दर्शन. अने चारित्रना देवता एवं २५ देवता नी डुल कुटी उर्भी करी ।

२ जिनचन्द्रसूरि चैत्यना नानी के बुद्ध देवता ने नचाववुं ठेहरावी. युवान देवता तथा गानारी गिर्यों नु निपेध करी पण जिनचन्द्रसूरि ए वधी देवता नु निपेध करी ।

३ जिनचन्द्रसूरिए आदिका ने मूल प्रतिमा ने अड़कवुं निगंथु है पण जिनचन्द्रसूरिए तो एस ठेहरावुं के आदिकाओ सर्वथा शुचि नहीं ज डोय माटे तेनणे कोई पण प्रतिमा ने नहीं अड़कवु ।

उत्तरगच्छीय ग्रन्थों में इन आचरणाओ के सम्बन्ध में कोई उल्लेख है या नहीं ? यह हमें अज्ञात है ।

### ग्रन्थ-रचना

आमकी विद्वत् प्रतिभा की परिचायक कोई कृति आज सामने नहीं है । केवल एक व्यवस्थाकुलक—( साधु. साध्वी. आचर. आदिका शिक्षाकुलक ) ही उपलब्ध है, जिसे सानुवाद इस पुस्तिका में प्रगट किया जा रहा है ।

आपके शासनकाल में रचित खरतरगच्छ का विस्तृत साहित्य उपलब्ध नहीं है। अद्यावधि हमारे अवलोकन में केवल एक ही ग्रन्थ “ग्रन्थचर्य प्रकरण” गा० ४३ का आया है जो कि श्रावक कपूरमल्ल की कृति है। यह ग्रन्थ छोटा सा एवं अप्रकाशित होने के कारण इस पुस्तक के परिशिष्ट में दे दिया गया है।

## उपसंहार

महात्मा भर्तृहरि की यह उक्ति “गुणा पूजास्थानं गुणिषु न च लिङ्गं न च वयः” सोलहो आने सत्य है। मणिधारीजी की दीक्षा केवल छः वर्ष और आचार्य पद भी ८ वर्ष जैसी लघु-वय में योगीन्द्र युगप्रधान परमपितामह श्रीजिनदत्तसूरिजी के द्वारा होना बहुत ही विस्मयकारक एवं आपकी अद्वितीय प्रतिभा का परिचायक है। चैत्यवासी पद्मचन्द्राचार्य जैसे वय एवं ज्ञानवृद्ध आचार्य को शास्त्रार्थ में परागत करना और दिह्रीश्वर महाराज मदनपाल का चमत्कृत हो अनन्य भक्त बनना आपकी विशिष्ट जीवनी के उत्तम प्रतीक है। खेद है कि आपके जीवनचरित्र को श्रीजिनपालोपाध्याय ने बहुत ही मंक्षिप्त रूप में संकलित किया है जिसके कारण हमें आपके सच्चे व्यक्तित्व को पहचानने में कठि-नता होती है पर हम श्रीजिनपालोपाध्याय को इस सद्प्रयत्न के लिए ग्राभुचाट दिये बिना नहीं रह सकते, क्योंकि आज हमें जो कुछ भी वास्तविक इतिवृत्त प्राप्त हुआ है वह उन्हीं की कृपा का सुफल है।



# महोपाध्याय श्री पुण्यसागर कृत

## ॥ श्रीजिनदत्तसूरि अष्टकम् ॥

श्रीजिनदत्तसूरिन्द पयः श्रीजिनचन्द्रसुगिन्द ।

नय (१२) मणि मंडित माल यसः कुशल हृदय वगचन्द ॥ १ ॥

संवत् निव सत्तागवयं महद्मि सुदि जन्तु ।

रासल तात सुमातु जन्तु देहद्वय देवि सुवन्त ॥ २ ॥

संवत् वार तिरोत्तरयः फागुण नवमि विशुद्ध ।

पंच महद्भय मरि वरियः बालजनि पडिबुद्ध ॥ ३ ॥

वरह सइ पंचोत्तरइ ए वैशाखाइ सुदि बद्धि ।

थापित विक्रमपुर नयारि जिनदत्तसूरि सुगद्धि ॥ ४ ॥

तेविसइ मातृव क्रमिणि, चवडसि सुद्ध परिणामि ।

सुरपुरि पत्तइ सुगिपवरः श्री जोगियपुर ठामि ॥ ५ ॥

सुद्ध गुरु पूजा जह करइ ए नासय तामु किलेस ।

रोग सोग आरति टलइ ए मिलइ लच्छि सुविशेन ॥ ६ ॥

नाम मंत्र जे सुत्र जपइ ए मणु तगु सुद्धि तिनन्त ।

मनवद्वित सवि तनु हुवईं कज्जारंम अवन्त ॥ ७ ॥

जासु सुजसु जगि नितमिग ए चंदुज्जल निकलंक ।

प्रभु प्रताप गुग विष्णुइ हरइ इनर करि संक ॥ ८ ॥

इय श्रीजिनचन्द्रसूरि गुरु संथिगिउ गुनि पुन्त ।

श्री "पुण्यसागर" वीनवइ सहसुर होउ सुप्रसन्न ॥ ९ ॥

इति श्रीजिनचन्द्रसूरि महाप्रणावोक अष्टकं संपूर्णम् ।

॥ अहं नमः ॥

## परिशिष्ट { १ }

श्रीजिनचन्द्रसरिजी महाराजकृत

व्यक्थ-शिक्षा-कुलकम्

पणमिय वीरं पणयंगिवग्गसग्गापवग्ग-सोक्खकरं ।

सिरिपासधम्मसामिं तीत्थयरं सव्वदोसहरं ॥ १ ॥

प्रणम्य वीरं प्रणताङ्गि-वर्गग्गर्गापवर्गसोक्ख्यकरम् ।

श्रीपार्श्वधर्मस्वामिनं तीर्थकरं सर्वदोषहरम् ॥ १ ॥

अर्थ—नमस्कार करनेवाले भव्यजीव ममूह को स्वर्ग और मोक्ष के सुगम देने वाले धी महावीरभगवान को एवं धर्म के स्वामी-तीर्थ को करने वाले सब दोषों को हरनेवाले श्री पार्श्वनाथ भगवान को प्रणाम करके ।

साहृण साहुणीणं, तह सावय-सावियाण गुणहेउं ।

संखेवेण दंसेमि, सुद्धसद्धम्मववहारं ॥ २ ॥

साधूना साध्वीना तथा श्रावकश्राविकाणा गुणहेतोः ।

संक्षेपेण दर्शयामि शुद्धसद्धर्मव्यवहारम् ॥ २ ॥

अर्थ—साधु मानवियों के लिये तथा श्रावक श्राविकाओं के गुण का (सुख का) कारण रूप शुद्ध सत्यधर्म के व्यवहार को संक्षेप से दिखाता हूँ ।

उत्सर्गेण अववाय ओवि-सिद्धंत सुत्तनिदिद्धं ।

गीयत्थाइणं वा धमत्थमणत्थसत्थहरं ॥ ३ ॥

उत्सर्गेण अपवादतोऽपि सिद्धान्तसूत्रनिर्दिष्टम् ।

गीतार्थाचीर्णं वा धर्मार्थमनर्थसार्थहरम् ॥ ३ ॥

अर्थ—उत्सर्ग अपवाद से आगम-ग्रन्थों द्वारा निर्दिष्ट और गीतायों से आचरित वह धर्म-व्यवहार अनर्थसमूह को हरनेवाला होता है ।

जेसिं गुरुंमि भत्ती बहुमाणो गउरवं भयं लज्जा ।

नेहो वि अत्थि तेति, गुरुकुलवासो भवे सहलो ॥ ४ ॥

येषा गुरौ भक्ति-वहुमानं गौरव भय लज्जा ।

स्नेहोऽप्यस्ति तेषा गुरुकुलवासो भवेत् सफलः ॥ ४ ॥

अर्थ—जिनकी गुरु महाराज में भक्ति है, बहुमान है, गौरव है गुरु महाराज से जो डरते हैं,—खराब काम करने में लज्जा भी करते हैं और गुरुमहाराज के प्रति स्नेह भी रखते हैं उन साधु पुरुषों का गुरुकुलवास सफल हो जाता है ।

अवन्नवाङ्गो सीसा, माणिणो छिदपेसिणो ।

सबुद्धिकयमाहप्पा, गुरुणो रिउणो व्व ते नेया ॥ ५ ॥

अवर्णवादिनः शिष्या मानिनश्छिद्रप्रेक्षिणः ।

स्वबुद्धिकृतमाहात्म्या गुरोरपि च इव ते ब्रूयाः ॥ ५ ॥

अर्थ—जो शिष्य गुरुमहाराज के अवर्णवादी है अभिमानी और छिन्नान्वेषी हैं अपने को अधिक बुद्धिमान समझने वाले हैं उनको गिप्य नहीं गुरुमहाराज के शत्रु जैसे मानने चाहिये ।

नाणदंसणसंजूत्तो खेत्तकालाणुसारओ ।

चारित्तं वट्ठमाणो जो सुद्धसद्धम्मदेसओ ॥ ६ ॥

ज्ञानदर्शनसंयुक्तः क्षेत्रकालानुसारगः ।

चारित्र्ये वर्तमानो यः शुद्धसद्धर्म देशकः ॥ ६ ॥

अर्थ—जो सम्यग् दर्शन और ज्ञान में संयुक्त हैं क्षेत्र और काल के अनुसार ही चारित्र्य में वर्तमान हैं ये ही साधु पुरुष शुद्ध और सत्य धर्म के उपदेशक हो सकते हैं ।

१ पेट्ठिणो ।

२—सिद्ध । ३—चरित्ते । ४—देसिओ ।

पासत्थाइ भयं जस्स-माणसे नत्थि सव्वहा ।

सव्वविज्जाय-तत्तन्तु खमाइगुणसंजुओ ॥ ७ ॥

पाश्चन्थादि भयं यस्य मानसे नास्ति सर्वथा ।

सर्वविद्यातत्त्वज्ञ. क्षमादिगुणसंयुक्त ॥ ७ ॥

अर्थ—पतिन आचार वाले पान्थों का भय जिनके मन में सर्वथा नहीं है । जो नव विद्या-तत्त्वों के जानकार होते हैं । जो क्षमादि गुणों वरुण संयुक्त होते हैं ।

पुरओ जस्स नन्नस्स जओ होअ विवाइणो ।

भवे जुगप्पहाणो सो सव्वमोक्खकरो गुरू ॥ ८ ॥

पुरतो यस्य नान्यस्य जयो भवेद् विवादितः ।

भवेद् युगप्रधान. स सर्वसौख्यकरो गुरुः ॥ ८ ॥

अर्थ—जिनके चन्सुत्र किमी विवादी-बादी का जय नहीं हो सकता वे युग में प्रधान गुरु सब सुख को करने वाले होते हैं ।

वारसंगाणि संघो वि चोत्तं पवयणं फुडं ।

पासायमिव खंभोव्व तं धरेइ सया य सो ॥ ९ ॥

द्वादशाङ्गानि संघोपि-उक्तं प्रवचनं स्फुटम् ।

प्रासादमिव स्तम्भ इव-तद्धारति सदा च सः ॥ ९ ॥

अर्थ—द्वादशांगी और नव को सूत्रों में स्पष्ट रूप से प्रवचन कहा है । उनको महल में खम्भे के जैसे हमेशा वही गुरु रक्ष करता है ।

तदाणाए पयट्टं तो, संघो मन्नह सग्गुणो ।

वियप्पेण विणा सम्मं, पावए परमं पयं ॥ १० ॥

तदाज्ञायां प्रवर्त्तन् संघो मण्यते सद्गुणः ।

विकल्पेन विना सम्यक् प्राप्नुयात् परमं पदम् ॥ १० ॥

अर्थ—तथोक्त प्रवचनाधार युगप्रधान गुरु की आज्ञा में वर्तता हुआ मघ ही सद्गुणी कहा जा सकता है । विना किसी सकल्प विकल्प के सम्यक् परमपद को वह प्राप्त करता है ।

जिणदत्ताणमासज्ज, जं कीरइ तयं हियं ।

जो तं लंघई मोहा-भवारन्ने भमेइ सो ॥ ११ ॥

जिन-दत्ताज्ञामासाद्य यत्क्रियते तद् हितम् ।

यस्तं लङ्घयति मोहाद्-भवारण्ये भमिति सः ॥ ११ ॥

अर्थ—श्रीजिनभगवान की दी हुई आज्ञा को श्रीजिनदत्ताज्ञा को पाकर के जो अनुष्ठान किया जाता है वह हितकारी होता है । जो मोह से उस का—श्रीजिनदत्ताज्ञा का उल्लंघन करता है, वह भवाटवी में भटक्ता है ।

पढणं सवणं ज्ञाणं, विहारो गुणणं तहा ।

तवो कम्म विहाणं च, सीवणं तुन्नणाइ वि ॥ १२ ॥

पठनं श्रावणं ध्यानं-विहारो गुणनं तथा ।

तपः कर्म विधानं च, सीवनं तुन्ननाद्यपि ॥१२॥

अर्थ—पढ़ना, सुनना, ध्यान करना, एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाना रूप विहार करना, गुणना, तपश्चर्या क्रियाविधान और मीना तूना आदि ।

भोयणं सुवणं जाणं ठाणं दाणं निसेहणं ।

धारणं पोत्थयाईणं, आणाए गुरुणो सया ॥ १३ ॥

भोजनं शयनं चानं स्थानं दानं निषेधनम् ।

धारणं<sup>१</sup> पुस्तकादीना-मात्रया गुरो. सदा ॥ १३ ॥

अर्थ—भोजन करना, सोना, गमन करना, स्थिति करना, दान करना, निषेध करना, पुस्तक आदिको का धारण करना इत्यादि अनुष्ठान गुरु को आज्ञा ने ही करने चाहिये ।

तं कज्जंपि न कायव्वं, जं गुरुहिं न मन्नियं ।

गुरुणो जं जहा त्रित्ति, कुज्जा सीसो तहाय तं ॥१४॥

तत्कार्यमपि नो कर्तव्यं यद् गुरुभिर्न मानितम् ।

गुरवो यद् यथा ब्रुवते कुर्याच्छिष्यस्तथा च तत् ॥१४॥

अर्थ—ऐसा कार्य करना ही नहीं चाहिये जो गुरुओं के अनुमत न हो । गुरुन्धारज जब जो काम फरमावें निध को चाहिये कि वह उसी कार्य को करे ।

वायणा स्वरिणो जुत्ता, निसेज्जा पयकंवला ।

चउक्की पुट्टिवट्टो य, पायाहो-पाय पुंछणं ॥ १५ ॥

वाचना सुग्रेयुक्ता निपद्या पदकम्बला ।

चतुष्किका पृष्टिपट्टश्च-पादाधः पादप्रोच्छनम् ॥ १५ ॥

अर्थ—आचार्य महाराज से वाचना का होना युक्त है । आसन पद-  
कम्बल चौकी पीठफलरु और पैरों के नीचे पादप्रोच्छन भी आचार्य महाराज  
के लिये होते हैं ।

अर्थ - वाचनाचार्य के लिये निपद्या—आसन पदकम्बल चौकी पीठफलरु  
पदतल पादप्रोच्छन होना युक्त है ।

पाएसुं चंदणं जुत्तं न कप्पुराइ खेवणं ।

साविया धवले दित्ति, एसो सुगुरु दिक्खिओ ॥ १६ ॥

पादयोश्चन्दनं युक्तं न कर्पूरादिक्षेपणं ।

श्राविका धवलान् ददत्येप सुगुरुर्दृष्टः ॥ १६ ॥

त्येप ( विधिः ) सुगुरुदर्शितः ॥

अर्थ—अगपूजा के समय आचार्यदेव के चरणों में चंदन लगाना  
युक्त है, न कि कर्पूर आदि का खेना । आचार्य देव के सामने श्राविकाएँ  
धवल देती हैं मंगल गीत गाती हैं । एसे सुगुरु देखे गये हैं । अथवा  
यह सुगुरु का फरमान है ।



अर्थ—वाचनाचार्य के चरणों में चन्दन पूजा हो युक्त है, न कि कर्पूर आदि का डालना । श्राविकाएँ धबल ठती हैं—मंगल गाना हैं । यह मुग़ल का फरमान है ।

पद्मजिणवल्लभसरिसो वाणायरिओ वि होइ जइ कोवि ।  
कर्पूरवामखिवणं तस्स मिरे कीरई जुत्तं ॥ १७ ॥

प्रभुजिन वह्म सद्दशो-वाचानाचार्योऽपि भवति यदि कोऽपि ।  
कर्पूरवास श्लेषणं तस्य-शिरसि क्रियते युक्तम् ॥ १७ ॥

अर्थ—समर्थ ऐसे श्रीजिनवल्लभजी महाराज के जैसे वाचनाचार्य यदि झंडे हो तो उनके मस्तक पर कर्पूरवाम का डालना युक्त हो है ।

कीरई वामनिकखेयो उज्जायस्सय संगओ ।  
अक्खण्य सकर्पूरं न दिज्झंति य तस्सिरे ॥ १८ ॥

क्रियते वासनिश्लेष-उपाध्यायस्य च संगतः ।  
अक्षतान सकर्पूरान्-न दीयन्ते च तच्छिरसि ॥ १८ ॥

अर्थ—उपाध्यायजी महाराज के उपर वास-श्लेष का करना संगत है ।  
कर्पूर सहित अक्षतों को उनके मस्तक पर नहीं डालने चाहिये ।

जो सिंहटाणिओ सूरि, सो होइ पवयणपहुत्ति ।  
पवयणपभावणा हेउं, तस्स पदसारओ कुज्जा ॥ १९ ॥

यः सिंहस्थानीयः सूरिः स भवेत् प्रवचनप्रभुरिति ।

प्रवचनप्रभावनाहेतोः, तस्य पदसारकः कुर्यात् ॥ १६ ॥

अर्थ—जो सिंह के जैसे होते हैं वे आचार्य प्रवचन के स्वामी होते हैं । ऐसा जान कर प्रवचन को प्रभावना के हेतु उनकी पदपूजा पधरावणी विस्तार से करे ।

वसहृद्वाणिया जे उ सामन्नेणं तु कीरइ ते सिं ।

जंवु द्वाणियाणं तु जुचो संखेवओ समासेणं ॥ २० ॥

वृषभरथानीया ये तु सामान्येन तु क्रियते तेषाम् ।

जंवुकरथानीयानां तु युक्तः संक्षेपतः समासेन ॥ २० ॥

अर्थ—जो आचार्य बेल के जैसे प्रवचन को चलाते हैं उनकी पदपूजा सामान्य से की जाती है, और जो नाममात्र के आचार्य—जवुरु स्थानीय सींगल के जैसे हैं, उनकी पदपूजा संक्षेप से करनी युक्त होती है ।

अट्टाहियाइपन्वेसु निज्झइ छत्तां गिहेसु जुत्तामिणं ।

सामन्नसाहुवत्थाइ दाणं दियहे न जुत्तं तं ॥ २१ ॥

अष्टाहिकादिपर्वसु दीयते छत्रं गृहेषु युक्तमिदम् ।

सामान्य साध्वचस्थायामिदानीं दीयते न युक्तं तत् ॥ २१ ॥

अर्थ—अट्टाहि आदि पर्वों में [ गृहस्थों के ] घरों में [ आचार्य के लिये ] छत्र लगाया जाता है । यह युक्त है । आजकल सामान्य गान्धु धनरत्न में दिया जाता है वह युक्त नहीं है ।

तदुत्तवयणासत्तो विहाराइसु वड्डइ ।

अकहियो गुरुणा नेय लेइ किंपि न मिल्लह ॥ २२ ॥

तदुक्तवचनासक्ते विहारादिषु वर्तते ।

अकथितो गुरुणा नैव लाति किमपि न त्यजति ॥ २२ ॥

अर्थ—पूर्वोक्त आचार्यदेव के वचनों में आसक्त होता हुआ माधु विहारादिक में प्रवृत्ति करता है । गुरु के बिना कहे न कुछ लेता है न कुछ छोड़ता है ।

ठाविआं गुरुणा जत्थ जो अज्जाइण पालगो ।

तेण ताओ वि अज्जाओ, पलणिज्जा गुरुत्तए ॥ २३ ॥

स्थापितो गुरुणा यत्र च आर्यादीनां पालकः ।

तेन ता अच्यार्या. पालनीया गुरुतया ॥ २३ ॥

अर्थ—जहा पर जिसको गुरुमहाराज ने आर्यादिकों का पालन रक्षा करने वाला नियुक्त किया है उसको चाहिये कि गुरु-आचार्य के जैसे ही उन आर्याओं की रक्षा करे ।

गुरु आणाए वड्डंतो सो अज्जाहिं पि सायरं ।

गुरुव्व मन्नणिज्जोचि तदुत्त करणा सया ॥ २४ ॥

गुर्वाज्ञायां वर्तन् स आर्याभिरपि सादरम् ।

गुरुरिव माननीय इति तदुक्तकरणान् सदा ॥ २४ ॥

अर्थ—आर्याओं को भी चाहिये कि वे गुरु आज्ञा में वर्तमान उस पालक की गुरु के जैसे ही हमेशा उसकी कही हुई आज्ञा को करते हुए सादर सन्मान करें।

जइ को विदेइ अज्जाणं वत्थाइ सयणोत्तयं ।

घेतव्यं तं तदाणाए ताहिं समणीहिं नन्नहा ॥ २५ ॥

यदि कोऽपि ददात्यार्याभ्यो-वस्त्रादि स्वजनस्ततः ।

गृहीतव्यं तत् तदाज्ञया ताभिः श्रमणीभिर्नान्यथा ॥ २५ ॥

अर्थ—यदि कोई स्वजन-सम्बन्धी आर्याओं को वस्त्र आदि देता है तो उम पालक की आज्ञा में उन श्रमणीयों को ग्रहण करना चाहिये। नहीं तो नहीं।

सयणाईहिं पि जं दिन्नं तंतस्सप्पिंति भावओ ।

जइ सो तासिं तं देइ, तया गिण्हंति ताओवि ॥ २६ ॥

स्वजनादिभिरपि यद्वत्तं-तत्तन्मायर्पन्ति भावतः ।

यदि स ताभ्यो ददाति तदा गृणहन्ति ता अपि ॥ २६ ॥

अर्थ—स्वजनादिकों ने जो कुछ दिया भाव से उम-पालक को अर्पण करना चाहिये। यदि वह-पालक उस वस्त्रादि को उन्हे दे तो उम समय उनको ग्रहण करना चाहिये।

जइ तस्स न निवेयन्ति तं गिण्हंति जहामई ।

आणा भट्ठा तया अज्जा पावन्ति य न मंडलिं ॥ २७ ॥

यदि तस्मै न निवेदयन्ति तद्गृण्हन्ति यथामति ।

आज्ञाभ्रष्टा सा आर्या प्राप्नोति च न मण्डलीम् ॥ २७ ॥

अर्थ—यदि उस पालक को निवेदन नहीं करती हैं और यथामति-  
स्वेच्छा से ग्रहण करती है तो वे आर्यायि आज्ञा से भ्रष्ट हैं और मण्डलि  
समुदाय में रहने योग्य नहीं है ।

जइ सो न देइ अज्जाणं लद्धवत्थाइ लोहओ ।

सुगुरुत्ताओ चुको मण्डलिं पावए कहिं ॥ २८ ॥

यदि स न ददात्यार्याभ्योः लब्धवस्त्रादि लोभतः ।

सुगुरुतातश्च्युतः मंडलीं प्राप्नुयात् कथम् ॥ २८ ॥

अर्थ—यदि वह पालक लोभ से पाये हुए वस्त्रादि उन आर्याओं को  
नहीं देता है तो वह अपने गुरुत्व से भ्रष्ट होता है । वह कैसे मण्डलि  
का पालन करेगा ? सर्वथा नहीं ।

देवस्स नाण दव्वं तु साहारण धणं तहा ।

सावगेहिं तिहा काउं नेयव्वं वुद्धि मायरा ॥ २९ ॥

देवस्य ज्ञान द्रव्यं तु साधारणं धनं तथा ।

श्रावकैस्त्रिधा कृत्वा नेयं वृद्धिमादरात् ॥ २९ ॥

अर्थ—श्रावकों को देवद्रव्य, ज्ञानद्रव्य और साधारणद्रव्य ऐसे  
धार्मिक धन के तीन भेद करने चाहिये, और तत्परता से उसकी वृद्धि  
करनी चाहिये ।

साहू वा साहुणीओ वा कारित्ता नाणपूअणं ।

गिण्हंता सयं जंति आणा भट्टाय दुग्गइं ॥ ३० ॥

साधवो वा साध्व्यो वा कारयित्वा ज्ञानपूजनम् ।

गृण्हन्त स्वयं यान्त्या-ज्ञाभ्रष्टाश्च दुर्गतिम् ॥ ३० ॥

अर्थ—साधु और साध्वी ज्ञानपूजा कराके स्वयं ग्रहण करते हैं तो वे आज्ञाभ्रष्ट हो कर दुर्गति में जाते हैं ।

सज्जओ सज्जई सद्धो, सद्धी वा कलहं करे ।

चुकंति दंसणाओ ते होउं तइपभावगा ॥ ३१ ॥

संयतः संयती श्राद्धः श्राद्धी वा कलहं क्रियात् ।

भ्रश्यन्ति दर्शनात्ते-भूत्वा तदप्रभावकाः ॥ ३१ ॥

अर्थ—साधु, साध्वी, श्रावक और श्राविका यदि एक दूसरे से कलह करते हैं तो वे सम्यक्त्व में भ्रष्ट होते हैं और वे शासन की हानि करनेवाले होते हैं ।

गिहीणं जे उ गेहाओ, आणित्तासणपाणगं ।

निक्कारणं विच्छडंता, जंति ते सुगइं कहं ॥ ३२ ॥

गृहिणां ये तु गृहा—दानाय्यासनपानकम् ।

निष्कारणं क्षिपन्तो यान्ति ते सुगतिं कथम् ॥ ३२ ॥

अर्थ—जो साधु साध्वी गृहस्थों के घर में अमण पान आदि आहार को ला करके अकारण हो फेंक देते हैं वे कैसे सुगति में जा सकते हैं ?

यदि तस्मै न निवेदयन्ति तद्गृण्णन्ति यथामति ।

आज्ञाभ्रष्टा सा आर्या प्राप्नोति च न मण्डलीम् ॥ २७ ॥

अर्थ—यदि हम पालक को निवेदन नहीं करती हैं और यथामति-  
स्वेच्छा से ग्रहण करती हैं तो वे आर्यायि आज्ञा से भ्रष्ट हैं और मण्डलि  
समुदाय में रहने योग्य नहीं हैं ।

जइ सो न देइ अज्जाणं लद्धवत्थाइ लोहओ ।

सुगुरुत्ताओ चुक्को मण्डलि पावए कहि ॥ २८ ॥

यदि स न ददात्यार्याभ्योः लब्धवस्त्रादि लोभत ।

सुगुरुत्तातश्च्युतः मंडलीं प्राप्नुयात् कथम् ॥ २८ ॥

अर्थ—यदि वह पालक लोभ से पाये हुए वस्त्रादि उन आर्याओं को  
नहीं देता है तो वह अपने गुरुत्व से भ्रष्ट होता है । वह कैसे मण्डलि  
का पालन करेगा ? सर्वथा नहीं ।

देवस्स नाण दव्वं तु साहारण धणं तथा ।

सावगेहिं तिहा काउं नेयव्वं वुद्धि मायरा ॥ २९ ॥

देवस्य ज्ञान द्रव्यं तु साधारणं धनं तथा ।

श्रावकैस्त्रिधा कृत्वा नेयं वृद्धिमादरात् ॥ २९ ॥

अर्थ—श्रावकों को देवद्रव्य, ज्ञानद्रव्य और साधारणद्रव्य ऐसे  
धार्मिक धन के तीन भेद करने चाहिये, और तत्परता से उसकी वृद्धि  
करनी चाहिये ।

साहू वा साहुणीओ वा कारित्ता नाणपूअणं ।

गिण्हंता सयं जंति आणा भट्टाय दुग्गहं ॥ ३० ॥

साधवो वा साध्व्यो वा कारयित्वा ज्ञानपूजनम् ।

गृण्हन्तः स्वयं यान्त्या-ज्ञाभ्रष्टाश्च दुर्गतिम् ॥ ३० ॥

अर्थ—साधु और साध्वी ज्ञानपूजा कराके स्वयं ग्रहण करते हैं तो वे आनाभ्रष्ट हो कर दुर्गति में जाते हैं ।

सज्जओ सज्जई सद्धो, सद्धी वा कलहं करे ।

चुक्कंति दंसणाओ ते होउं तइप्रभावगा ॥ ३१ ॥

संयतः संयती श्राद्धः श्राद्धी वा कलहं क्रियात् ।

भ्रश्यन्ति दर्शनात्ते-भूत्वा तदप्रभावकाः ॥ ३१ ॥

अर्थ—साधु, साध्वी, श्रावक और श्राविका यदि एक दूसरे से कलह करते हैं तो वे सम्यक्त्व से भ्रष्ट होते हैं और वे शासन की होलना करनेवाले होते हैं ।

गिहीणं जे उ गेहाओ, आणित्तासणपाणगं ।

निक्कारणं विच्छडंता, जंति ते सुगहं कहं ॥ ३२ ॥

गृहिणा ये तु गृहा—दानाय्यासनपानकम् ।

निष्कारणं क्षिपन्तो यान्ति ते सुगतिं कथम् ॥ ३२ ॥

अर्थ—जो साधु साध्वी गृहस्थों के घर में अमण पान आदि आहार को ला करके अकारण ही पेंक देते हैं वे कैसे सुगति में जा सकते हैं ?



संगहन्ति य जे द्रव्यं गुरुणं न कहन्ति य ।

ते वि भट्टाहमा धिष्टा भ्रमन्ति भवसागरे ॥ ३३ ॥

संगृह्णन्ति च ये द्रव्यं, गुरुन न कथयन्ति च ।

तेऽपि भ्रष्टा अधमा धृष्टा भ्रमन्ति भवसागरे ॥ ३३ ॥

अर्थ—जो माधु सात्री द्रव्य का मग्रह न्गते हैं और गुरु को नहीं कहते हैं। वे भी भ्रष्ट अधम और धोटे भवसागर में भटकते हैं—डूबते हैं।

अवेलाए न साधूणं वसहीए साविगागमो ।

साधुणीए विसेसेण ना सहायाइ संगओ ॥ ३४ ॥

अवेलायां न साधूना वसतो श्राविकागमः ।

साध्व्या विशेषेण नासहायादौ सङ्गतः ॥ ३४ ॥

अर्थ—बिना समय माधुओं के स्थान में श्राविकाओं का आना उचित नहीं है। विशेष रूप से साध्वियों का आना भी संगत नहीं है। हाँ अन्धाय अवस्था में संगत हो मरना है।

गीयत्था गुरुणो जं जं खित्त कालाइ जाणगा ।

करिंति तमगीयत्थो जो कुज्जा दंमणी न सो ॥ ३५ ॥

गीतार्था गुरवो यद्वयन् क्षेत्र कालादि ज्ञायकाः ।

कुर्वन्ति तदगीतार्थो यत् कुर्याद् दर्शनी न सः ॥ ३५ ॥

अर्थ—क्षेत्र कालादि को जानने वाले गीतार्थ गुरु लोग जो करते हैं उमको बिना ममके जो अगीतार्थ आचरते हैं वे मम्यक्त्वो नहीं हैं ।

शुद्धसद्धर्मकारीणं जे सुगुरुणमंतिण ।

शुद्धं सदसणं लिति सग्गासिद्धिसुहावहं ॥ ३६ ॥

शुद्धसद्धर्मकारीणां ये सुगुरुणामन्तिके ।

शुद्धं सददर्शनं लान्ति, स्वर्गमिद्धिसुखावहम् ॥ ३६ ॥

अर्थ—शुद्ध सद्धर्म को करनेवाले गुरुओं के पास जो शुद्ध मम्यगुदर्शन-मम्यक्त्व लेते हैं । उनके लिये वह गुण स्वर्ग-मिद्धि के गुण को करनेवाला होता है ।

साविया ओ वि एवं जा गिन्हंति य सुदंसणं ।

तासिं शरीरदब्बाहं होज्जा सुगुरुसंतियं ॥ ३७ ॥

आविका अप्येवं या गृणहन्ति च सुदर्शनम् ।

तासां शरीरदब्बाणि भवेयुः सुगुरुसत्त्वानि ॥ ३७ ॥

अर्थ—जो आविकाय भी इस प्रकार गुदर्शन को ग्रहण करती हैं । वे तन, धन से गुरुगोत्र में मर्दव तत्पर रहती हैं ।

सावया साविया ओ वा गुरुत्तातं धणाइयं ।

जे न चांछंति तं दाउं दिन्नं पि गुरुणां पुरा ॥ ३८ ॥

आवकाः आविकाश्च वा गुरुत्वात्तद्वचनादिकम् ।

जे न वाञ्छन्ति ते दातुं दत्तमपि गुरुभ्यः पुरा ॥ ३८ ॥

अर्थ—जे आवक और आविकाएँ गुरुजी के समय दिया हुआ भी  
बनादिक—बड़ी संख्या होने से देने के नहीं चाहते हैं ।

ते क्वहं तेसि आणाए वडुंति समईवसा ।

वत्ता सम्मत्त वत्ता वि दूरं सातेहि सव्वहा ॥ ३९ ॥ युग्म

ते कथं तेषामाज्ञायां वर्तन्ते स्वमतिवशाः ।

त्यक्ता सम्यञ्चवार्तापि-दूरात्सतः सर्वथा ॥ ३९ ॥

अर्थ—उपर बताये के स्वच्छन्द आवक आविक उन गुरुओं की आज्ञा  
में कैसे वर्तें ? उस सम्यक् वार्ता के भी दूर से ही उनसे सर्वथा  
लग दी है । युग्म

सावया तुच्छवित्ता वि पोसंति सकुडुंवयं ।

धण धन्नावजोणेण, जावज्जीवं पि सायरं ॥ ४० ॥

आवकास्तुच्छवित्ता अपि पोषयन्ति स्वकुटुम्बकम् ।

वनवान्योपयोगेन-यावज्जीवमपि सादरम् ॥ ४० ॥

अर्थ—अन्य वन वाले भी आवक वन-वान्योपयोग से प्रयत्न पूर्वक  
अन्य कुटुम्ब को जीवन पर्यन्त पोषते हैं ।

तद्वाणद्वाण साहूण, मन्नवत्थाइचिंतणं ।

कुणंति समणीणं न, तेसिं सम्मत्तमत्थि किं ॥ ४१ ॥

तत्स्थानस्थानां साधूना-मन्नवस्त्रादिचिन्तनम् ।

कुर्वन्ति श्रमणीना न, तेषा सम्यक्त्वमस्ति किम् ॥ ४१ ॥

अर्थ धार्मिक कुटुम्ब स्थानीय साधु और साध्वियों के अन्न-वस्त्र आदि की यदि वे श्रावक चिन्ता-गार मगाल नहीं रखते तो उनमें सम्यक्त्व होता है क्या ? अर्थात् नहीं होता ।

जओ वोचं सुसहस धम्मराओ गुरुदेवाण समाहीए ।

वेयावच्चे नियमो सम्मद्विद्विस्स लिंगाई ॥ ४२ ॥

यत् उक्तं शुश्रूषा, धर्मरागो गुरुदेवानां समाधौ ।

वैयवृत्त्ये नियमः सम्यग्दृष्टैर्लिङ्गानि ॥ ४२ ॥

अर्थ—इसीलिये कहा है कि गुरुदेवों की शुश्रूषा करना, धर्म पर राग रखना, गुरुओं की समाधि को बढ़ाना, वेयावस्था करने का नियम रखना ये सम्यग्दृष्टि के चिह्न हैं ।

साहूण कप्पणिज्जं जं नचि दिन्नं कहिं चि (किंचि) तहिं ।

धीरा जहुत्तकारी, सुसावगा तं न भुजंति ॥ ४३ ॥

साधूनां कल्पनीयं यत् नापि कर्हिचित् किञ्चित् ।

धीरा यथोक्तकारिणः सुश्रावका तत्र भुजन्ते ॥ ४३ ॥

अर्थ—तथोक्त कामों को करनेवाले धीरसुश्रावक कहीं पर कुछ भी माधुओं के लिये जो कर्त्तव्य होता है, उसे साधुओं को बिना दिये नहीं भोगते हैं ।

वमहीसयणासनभक्तपाणवत्थ पत्ताइं ।

जइवि न पज्जत्तथणो थोवा वि हु थोवयं देइ ॥४४॥

वसति-सयना-सन भक्तपान वस्त्रपात्राणि ।

यद्यपि न पर्याप्तवनः स्तोकादपि स्तोत्रं देयात् ॥ ४४ ॥

अर्थ—यद्यपि श्रावक पर्याप्त धनवाला न होने पर भी वसति स्थान गय्या-सयारा आसन भान-पानी-औषध-वस्त्र-पात्र आदि थोड़े से भी थोड़ा दे ।

एगं विसोवगं सट्ठो तिसु ठाणसु देइ जो ।

अहिगं वा उत्सवाइसु सम्मत्ति होइ नन्नहा ॥४५॥

एतद् विसोपकं ( भागं ) श्राद्धस्त्रिषु स्थानेषु ददाति यः ।

अधिकं वा उत्सवाद्विषु सम्यक्त्वी भवति नान्यथा ॥४५॥

अर्थ—तीन स्थानों में—देव-गुरु-जान द्रव्यों की मद में श्रावक एक हिस्सा दे । उत्सवादिकों में अधिक भी दे । अन्यथा सम्यक्त्वी नहीं हो सकता ।

अग्गाहणं तु जम्मो य नामाकरण मुंडणं ।

पुत्ताइसु विवाहो य हवंति उत्सवा इमे ॥ ४६ ॥

सीमन्तोन्नयनं तु जन्म च नामाकरणं मुण्डनम् ।

पुत्रादीनां विवाहश्च भवन्ति उत्सवा इमे ॥ ४६ ॥

अर्थ—सीमतर्क-जन्म, नामकरण, मुण्डन, पुत्रादिकों के विवाह ये उत्सव के स्थान होते हैं ।

उत्सर्गेणासनाईणि कप्पणिज्जाणि जाणिउ ।

आहाकम्माइ दोसेण, जाणि चत्ताणि दूर ओ ॥ ४७ ॥

उत्सर्गेणासनादीनि कल्पनीयानि ज्ञात्वा ।

आधाकर्मादि दोषेण ज्ञात्वा त्याज्यानि दूरतः ॥ ४७ ॥

अर्थ—उत्सर्ग से कल्पनीय असन पान आदि को जान कर गाधु ले, और आधाकर्म आदि दोषपूर्ण जान कर दूर से ही त्याग दे ।

दायव्वाणि जईणं तु जेण वुत्तं जिणागमे ।

पिंडं सेज्जं च वत्थं च पत्तं सिज्जंभवेण उ ॥ ४८ ॥

दातव्यानि यतीना तु येन प्रोक्तं जिनागमे ।

पिण्डः शय्या च वस्त्रं च पात्रं च सख्यंभवेन तु ॥ ४८ ॥

अर्थ—यतियों को देने योग्य पिण्ड, शय्या, वस्त्र और पात्र श्री सख्य भवानार्थ ने दशर्व्वशालिक—जिनागम में कहा है उससे जाने ।

एवं सुवहुहा सुत्ते वोत्तमत्थि जहट्ठियं ।

तहाववायओ वावि नाणासुत्तंसु दंसियं ॥ ४९ ॥

एवं सुबहुधा सूत्रे प्रोक्तमस्ति यथास्थितम् ।

तथापवादतश्चापि नानासूत्रेषु दर्शितम् ॥ ४६ ॥

अर्थ—इस प्रकार सूत्र में यथास्थित उत्सर्ग मार्ग बहुत प्रकार से कहा हुआ है । तथा अपवाद भी नाना रूप से सूत्रों में दर्शित है ।

अच्चंतियाववाएणं किं पि कथ्यइ जंपियं ।

गीयत्यो तादिसं पप्य, कारणं तं करेइ य ॥ ५० ॥

आत्यन्तिकापवादेन किमपि कुत्रचिज्जल्पितम् ।

गीतार्थस्तादृशं प्राप्य कारणं तत् करोति च ॥ ५० ॥

अर्थ—क्यों ? आत्यन्तिक अपवाद से भी कुछ कहा हुआ होता है, उसको ऐसे ही कारण के प्राप्त होने पर गीतार्थ आचरते हैं ।

तंकरेतो तहा सो वि मज्जिज्जा तो भवणवे ।

एसा आणा जिणाणंतु तं कुणंतो तमुत्तरे ॥ ५१ ॥

तत्तुर्वन् तथा सोऽपि मज्जेन्न भवार्णवे ।

एषाब्बा जिनानां तु तां कुर्वन् तमुत्तीर्यात् ॥ ५१ ॥

अर्थ—वे गीतार्थ हम—अपवाद को आचरते हुए भवसमुद्र में नहीं डुबते प्रत्युत यह जिनेश्वरो की आज्ञा है उसको करते हुए उस संसार सागर में पार उतर जाते हैं ।

जओ भणिय मिणं सूत्ते

संथरणंमि असुद्धं दुण्हवि गिण्हंत दिंतयाणऽहियं ।

आउरदिट्ठतेणं तं चैव हियमसंथरणे ॥ ५२ ॥

यतो भणितमिदं सूत्रे \*

संस्तरणेऽशुद्धं द्वयोरपि गृह्यतो ददतो ऽहितम् ।

आतुर दृष्टान्तेन तच्चैव हितमसंस्तरणे ॥ ५२ ॥

अर्थ—इगलिये सूत्र में यह कहा है कि—

मुग्धपूर्वक निर्वाह होते हुए अशुद्ध लेने वाले और देने वाले दोनों का अहित होता है । तो गेगी के उदाहरण से निर्वाह न होने पर अशुद्ध लेने और देने वाले दोनों का हित होता है ।

“नय किं पि अणुन्नायं, पडिसिद्धं वाविजिणवरिंदेहिं ।”

एसा तेमि आणा ‘कज्जे सच्चण होयव्वं’ ॥ ५३ ॥

न च किमप्यनुज्ञातं प्रतिपिद्ध वापि जिनवरैन्दैः ।

एषा तेषामाज्ञा, कार्य्यं सत्येन भवितव्यम् ॥ ५३ ॥

अर्थ—श्रीतीर्थंकर भगवान ने एकान्त रूप न किसी कार्य का अनुमोदन हो किया है, न किसी का निषेध ही किया है । यह उनकी आज्ञा है कि “कार्य करते हुए सत्यभाव से सहित होना चाहिये ।”

\* स्थानाज्ञ सूत्र ( पृ० ११० ) की पहली पृष्ठि में ।

“दोण्हवि गेण्हन दंतयाणऽहिय ।”



मा कुड जइ तिगिच्छं, अहियासेऊण जइ तरइ मम्मं ।  
अहियासितम्म पुणो, जइ जांगा न हायन्ति ॥ ५४ ॥

मा करोतु यदि चिकिन्मां अव्यासोदुं यदि तरति सम्यक् ।  
अव्यामहतः पुनर्यदि योगा न हीयन्ते ॥ ५४ ॥

अर्थ—चिकिन्मा मन करो यदि मलो प्रकार से मुद्धन करना सम्य हो  
तो । यदि कटो को जानि से मुद्धन करने हुए योग-मन वचन और प्राया  
नष्ट न होने हों तो ।

कन्ताररोह मद्वाणा उम (?) गेलन्न माइ कज्जंमु ।  
सब्बायरंण जयणाए कृणइ जं साहु करणिज्जं ॥ ५५ ॥

कान्ताररोह विकटाध्वनि ग्लान्यादि-कार्येषु ।  
सर्वादरेण यतनया करोति यन्साधुकरणीयम् ॥ ५५ ॥

अर्थ—भयकर अटवी आदि को पार करते हुए विकट मार्ग में आने  
पर या रोग आदि कार्यों में जो करने योग्य काम होता है उसको साधु  
सर्वादर से यतना पूर्वक करता है ।

जावज्जीवं गुरुणां सुदृमसुद्वेण वावि कायव्वं ।  
वसहे वारसवासा अट्टारस भिक्खुणा मासा ॥ ५६ ॥

यावज्जीवं गुरो. शुद्धाशुद्धेण वापि कर्तव्यम् ।  
वृषभस्य द्वादशवर्षं अष्टादश भिक्षो मासान् ॥ ५६ ॥

अर्थ—यावज्जीवन गुरु की रक्षा परिस्थिति के अनुसार शुद्ध अशुद्ध तरीके से भी करनी ही चाहिये । बेल की गारह वर्ष पर्यंत और भिक्षु-पाशु की अठारह मास तक ।

असिवे ओमोयरिए राय पउट्टे भए य गेलन्ने ।

एमाइकारणेहि आहाकम्माइजयणाए ॥ ५७ ॥

अशिवेऽवमोदरिके (दुर्मिक्षे) राजप्रद्विष्टे भये च ग्लान्ये ।

इत्यादिकारणै-राधाकम्मादि यतनया ॥ ५७ ॥

अर्थ—आशिव और दुष्माल के उपस्थित होने पर, राजा के प्रद्विष्ट हो जाने पर, भय की अवस्था में, बीमारी की अवस्था में, इत्यादि कारणों में यतना से आध्यात्म आदि का सेवन होता है ।

जओ सिद्धन्ते वुचं—

काले चिय जयणाए मच्छर रहियाण उज्जमंताणं ।

जणजत्ता रहियाणं, होइ जह्चं जइण सया ॥ ५८ ॥

यतः सिद्धान्ते प्रोक्तम्—

काल एव यतनया मात्सर्यरहितानामुद्यमवताम् ।

जनयात्रारहिताना भवति यतित्वं यतीना सदा ॥ ५८ ॥

अर्थ—सदा में परमाया है कि—मदा मात्सर्ग रहित, समय में उत्पन्न शील, लोकयात्रा में रहित माधुओं की यात्र की यतना ही यतिपणा है । अर्थात् समय के जाण साधु ही साधु हैं ।

सालंघणो पडंतो वि अप्पाणं दुग्गमे वि धारेइ ।

इय सालंघणसेवी धारेइ जइ असद भावं ॥ ५६ ॥

सालम्बनः पततोऽप्यात्मानं दुर्गमेऽपि धारयति ।

इति सालम्बनसेवी धारयति यद्यशठभावम् ॥ ५६ ॥

अर्थ—सहारे वाला व्यक्ति दुर्गममार्ग में गिरते हुए भी आत्मा की रक्षा कर लेता है । इसी प्रकार सकारण अपवाद का सेवन करने वाला भी यदि सरल भाव को रखता है तो अपने आप को दुर्गति से बचा लेता है ।

वुत्तं सिद्धन्तसुत्तसु-गीयत्येहिं वि दंसियं ।

तमित्थालंघणं होइ, सुठ्ठु पुट्टं न सेसयं ॥ ६० ॥

प्रोक्तं सिद्धान्तसूत्रेषु-गीतार्थैरपि दर्शितम् ।

तदत्रालम्बनं भवति सुष्ठु पृष्टं न शेषकम् ॥ ६० ॥

अर्थ—सिद्धान्तसूत्रों में कहा हुआ और गीतार्थ आचार्यों द्वारा दर्शित मार्ग ही यहाँ पर आलंघन होता है जो कि भली प्रकार पृछा हुआ समझा हुआ होता है । दूसरा नहीं ।

साहम्मियाण जो दव्वं, लेइ नो दाउमिच्छइ ।

संते वित्ते सगेहेवि होज्जा किं तस्स दंसणं ॥ ६१ ॥

साधर्मिकाणा यो द्रव्यं लाति नो दातुमिच्छति ।

सति वित्ते स गेहेऽपि भवेत् किं तस्य दशनम् ॥ ६१ ॥

अर्थ—जो माधर्मियों के द्रव्य को ले लेता है और अपने घर में धन के होने पर भी देना नहीं चाहता है उसको भी क्या दर्शन सम्यक्त्व हो सकता है ? अर्थात् नहीं ।

सयं च लिहियं दिन्नं जाणंतो विहु जंपइ ।

मया न लिहियं दिन्नं नो जाणामिनि मग्गिओ ॥ ६२ ॥

म्वयं च लिखितं दत्तं जानपि खलु जल्पति ।

मया न लिखितं दत्तं नो जानामीति मार्गितः ॥ ६२ ॥

अर्थ—गुदने लिया है साधमी ने दिया है, फिर भी जो मागने पर जानता हुआ भी कहता है, न मैंने लिया है न तुमने दिया है, न मैं जानता ही हूँ ।

पच्चक्खं सो मुसावाई लोए वि अपभावणं ।

कुणंतो छिंदइ मूलं सो दंमण महद्दुमं ॥ ६३ ॥

प्रत्यक्षं स मृषावादी लोके ऽप्यप्रभावनाम् ।

धुर्वश्लेदयति मूलं स दर्शनमहद्द्रुमस्य ॥ ६३ ॥

अर्थ—यह प्रत्यक्ष में मृषावापी है लोक में अप्रभावना निदा को करता हुआ सम्यक् रूप बड़े भारी पेड़ को जड़ को काटता है ।

समं साहम्मिण्णा वि. राउलं देउलं करे ।

हीलयं धरणं जुद्धं, सो विहु नासइ दंसणं ॥ ६४ ॥

समं साधर्मिकेणापि राजकुलं देवकुलं कुर्यात् ।

हेलनं धरणं युद्धं सोऽपि खलु नाशयति दर्शनम् ॥ ६४ ॥

अर्थ—जो साधर्मिक के साथ भी राज दरबार करता है हीलना-  
तिरस्कार करता है, धरणा देता है, युद्ध करता है वह अपने सम्यक्त्व का  
नाश करता है ।

साधू वा सावगोवाचि साहूणी सावियाइ वा ।

वाडिप्पाया चि जे संति गुरुधम्मद्दुमस्स ते ॥ ६५ ॥

साधुर्वा श्रावको वापि साध्वी श्राविकादिर्वा ।

वृत्तिप्राया अपि ये सन्ति गुरुधर्मद्रुमस्य ते ॥ ६५ ॥

अर्थ—जो साधु श्रावक, साध्वी और श्राविकायें भी बड़े धर्मरूप पेड़  
की रक्षा करने वाली वाड के जैसे हैं वे ।

पालणिज्जा पयत्तेण, वत्थपाणासणाइणा ।

सायरं सो न तेसिंतु करिज्जा समुवेहणं ॥ ६६ ॥

पालनीयाः प्रयत्नेन वस्त्रपानासनादिना ।

सादरं स न तेषां तु कुर्यात् समुपेक्षणम् ॥ ६६ ॥

अर्थ—वस्त्र खान पान आदि से आदरपूर्वक पालने योग्य हैं । उनको  
दृष्टेक्षा कभी भी नहीं करनी चाहिये ।

जइ सो वि निग्गुणो नाउं समईए चि निंदई ।

सा वाडी उक्खया तेण संति धम्मद्दुरक्खगा ॥ ६७ ॥

यदि सोऽपि निर्गुणो ज्ञात्वा स्वमत्यापि निन्दति ।

सा धृतिरक्षता तेन सती धर्मदुरक्षिका ॥ ६७ ॥

अर्थ—यदि वह निर्गुण जान करके भी स्वच्छन्दतया निंदा करता है तो उमने उस धर्मरक्ष को रक्षिका वाउ को ही तोड़ दी है ।

आणा वि तेण सा भग्गा गुरुणां सोक्खकारिणी ।

मिच्छदिद्वितथो सो वि लद्धुं तल्लक्खणावलिं ॥ ६८ ॥

आह्वापि तेन सा भग्ना गुरोः सौख्यकारिणी ।

मिथ्यादृष्टितया सोऽपि लब्धुं तत्क्षणावलीम् ॥ ६८ ॥

अर्थ—उमने मिथ्यादृष्टिभाव में, और मिथ्यादृष्टि के चित्त-दुर्गति को परपरा पाने को परमगुण करनेवाली गुरुमहाराज को आह्वा भी गणित कर दी ।

जणेइ निव्वुइं जन्तु-जायं फलमणुत्तरं ।

गुरुधम्मदुमाहिंतो तेण तं पि ह्नु हागियं ॥ ६९ ॥

जनयति निर्वृतिं यत्तु जान फलमनुत्तरम् ।

गुरुधर्मदुमान तेन नदपि ग्यट्टु हारितम् ॥ ६९ ॥

अर्थ—जो निर्वृति को पैदा करना है ऐसा बड़े धर्मरक्ष से पैदा हुआ अनुत्तरफल उगरो भी उमने निवृत्ति परके हार दिया ।

चायणं पिह्नु सो देइ जां दाउं जाणइं तयं ।

परदुच्चयणं सोच्चा जां रोसेण न जिप्पइ ॥ ७० ॥

नोदनमपि खलु स ददाति यो दानं जानाति तक्न ।

परदुर्वचनं श्रुत्वा यो रोपेण न जीयते ॥ ७० ॥

अर्थ—दूसरे के दुर्वचनो को सुन कर जो रोप में पूर्ण नहीं हो जाता वही महापुरुष दूसरो को धर्म में प्रेरणा करता है और प्रेरणा करना भी जानता है ।

नाहंकारं करेद्भक्ति मायामोहविचज्जिओ ।

सर्वजीवहिं चित्ते जस्सत्थि सुविवेयओ ॥ ७१ ॥

नाहंकारं करोतीति मायामोहविचर्जितः ।

सर्वजीवहितं चित्ते यस्यास्ति सुविवेकतः ॥ ७१ ॥

अर्थ—जिसने चित्त में सुविवेक से सब जीवों का हित रखा हुआ है । वह मायामोह से रहित व्यक्ति कभी अहंकार को नहीं करता ।

जा कावि गुरुणो आणा शुद्धसद्धर्मसाहिगा ।

कहिया हियाय सम्मं कायव्वा विहिणा य सा ॥ ७२ ॥

या कापि गुरोराज्ञा शुद्धसद्धर्मसाधिका ।

कथिता हिताय सम्यक् कर्त्तव्या विधिना च सा ॥ ७२ ॥

अर्थ—शुद्ध सद्धर्म को साधने वाली जो कुछ भी गुरु महाराज की आज्ञा श्री । हित के लिये कही है । हितपियों के विधिपूर्वक उसे पालनी चाहिये ।

संखेवेण मिहुत्तमागममयं गीयत्थसत्थोचियं,

कीरंतं गुणहेउनिव्वुइकरं भव्वाण सव्वेसि जं ।

साह्रणं समणीगणस्सय सयासड्ढाण सड्ढीण य,  
सिक्खत्थं जिणचंदस्सरिपयवीसंसाह्रणं सव्वहा ॥७३॥

मझेपेण्होषतमागममयं गीतार्थशास्त्रोचितं ।  
कुर्वद् गुणहेतु निर्वृत्तिकरं भव्याना सर्वेषां यत् ॥  
साधूनां श्रमणीगणस्य च सदा श्राद्धानां श्राद्धीनां च ।  
शिक्षार्थं जिनचन्द्रसूरिपदवीसंसाधकं सर्वथा ॥७३॥

अर्थ—यहां सद्योप मे आगमममत और गीतार्थों के सिद्धान्त के अनुगुल गुण कारण को प्रकटाने वाला, सब भव्यान्माओं को निर्गति करने वाला साधु-गाणी समुदाय को और श्रावक श्राविका समूह को शिक्षा देने के लिये सर्वथा श्रीजिनचन्द्रसूरि ( तीर्थंकर और आचार्य ) पद को साधनेवाला विषय कहा है । इसमें "जिनचन्द्रसूरि" इस पद मे कर्त्ता ने स्वनाम भी सूचित किया है ।

एयं जिणदत्ताणं करेइ जो कारवेइ मन्नेइ ।  
सो सव्वदुहाण लहुं जलंजलिं देइ सिच मेइ ॥७४॥

एता जिनदत्ताणां करोति य कारापयति मानयति ।  
स सर्वदुःखेभ्यो लघु जलाञ्जलिं ददाति शिवमेति ॥७४॥

अर्थ—इस प्रकार जिन भगवान को दी हुई [ और श्रीजिनदत्तसूरि मुहूर्त्त की ] आज्ञा को जो आचरता है इसमें मे मान्य करवाता है, मानता है यह सब दुःखों को छुट्टाट जलाञ्जलि देता है और मोक्ष मे पहुँचाता है ।

साधु-साध्वी-श्रावक-श्राविका शिक्षा मुलकम्



## परिशिष्ट ( २ )

॥ ॐ नमो वीतरागाय ॥

श्री कपूरमल्ल विरचितम्

### ब्रह्मचर्य परिकरणम्

पउम रयणाइ रइया, भासुरकिरणेहिं नहयलं चित्तं ।  
देविंदमडलिलच्छी, नमिय जिणं वसइ कमकमले ॥ १ ॥  
णिज्जियअणंगवीर, सुद्धप्पा भायमाण त वीरं ।  
निमिय सिरिधम्मसिहरं, वंभवयं सु नध वोच्छामि । २ ॥ युग्मं  
तं वंभवयं दुविहं, दव्वं भावं जिणेहिं णिद्धिद्वं ।  
जो चरइ सम्मणाणो, णिव्वाणसुहं च पावेइ ॥ ३ ॥  
वंभं भणियइ आया, तस्स सरूवं च चरइ जो साहू ।  
सो भाववंभवरणं इत्थीवायेण दव्वो य ॥ ४ ॥  
नरतिरियदेवइत्थी उवलाइय धाओ दारुचित्तंगा ।  
मणवयणकायचाये नवकोडिविसुद्ध सो साहू ॥ ५ ॥  
चारितमोहउदये इत्थीरूवेण रंजिओ मूढो ।  
ते खुह अवयठाणा पुगलदव्वस्स परिणामा ॥ ६ ॥  
परिहरह एस इत्थी कुच्चियमलधाओ असुइठाणं च ।  
सूडपडणगलणधम्मा रागविसं कारिणी वली ॥ ७ ॥

जह घट्ट महराभरियो चंदणकुमुमेहि पूर्यो उवरि ।  
स कहं हवइ विमुहो तह अमुहसरीरं जाण ॥ ८ ॥  
जइ अतिथ भयवंतो गुणहो गल्लेहि रुहिरनिम्सरई ।  
तं गियमलेण रज्जइ तह मूढो रंजए विसण ॥ ९ ॥  
पुन्नुदयविसयमुक्खं भुजंतो जीउ बंधण पाव ।  
पुन्रखणं खीयइ सो णाणी जो परिषयइ ॥ १० ॥  
जो परदेहविरत्तो गियदेहेण य करेइ अणुरायं ।  
अप्पसहावे मुरयं सो णीगवो हवइ साह ॥ ११ ॥  
इयं असासई चुंदी तेमि पेमं न धारये ।  
भाणह एगमप्पाणं जं पावेह धुवं पयं ॥ १२ ॥  
अमुई असासई जो पमया चय अमुहबंधकारिणा ।  
रुउ दिव्वमहालच्छी सा एगा वरहु वरंगणा ॥ १३ ॥  
सुउ भुइ सामई जा मोहागिणि णिजलो य सिरिचसउ ।  
पुणरवि न देठ गमणं अट्टुहा भोगिणी मुजसा ॥ १४ ॥  
तम्मिय जराण मच्चू अगियरसं अहरपाणिचंदाभा ।  
सारमहुसिद्धिरमणी अणतमुहकारिणी लच्छी ॥ १५ ॥  
जइ चयउ अण इत्थी णिम्मलरयणेहि मजुओ गमह ।  
आयरइ तया लच्छी णिग्गममुह देइ ना रंभा ॥ १६ ॥  
जो हयइ यीयरानो पेयलमहरयणभूमियसरीरो ।  
नो रगइ सिद्धिरमणी नय अन्नो जिनवरो भणह ॥ १७ ॥  
परं विमुद्धिमागइ नं वयउ निहिल्लन्तीयमंदिरे ।  
भुजइ अणंतमुक्खं सुहं निहं महादिव्वं ॥ १८ ॥

सपरं वाधा सहियं विछिन्नं वंधकारणं विसमं ।  
 इय पंचमलविमुक्कं तं सुद्धं जिणवरो भणइ ॥ १९ ॥  
 अइसयमायसमुत्थं णिपन्नं णिच्चतं हवइ सिद्धं ।  
 इंदेहिं अणंतगुणं अणोवमं तं महादिव्वं ॥ २० ॥  
 संपुण्णविमलणाणं दंसणसुहसत्तिवीरियनिवासं ।  
 सिद्धं बुद्धं णिच्चं तं वदे लोयसिहरत्थं ॥ २१ ॥  
 तित्थयरचक्कवट्ठी गव्भं धारंति पुरिसरयण च ।  
 ते सलहिज्जइ इत्थी अह सीलवईय न य अन्नं ॥ २२ ॥  
 सासंगि दोसदीवहिं णियगुणरयणेहिं लुंचियो होइ ।  
 पंचमहव्वयनासो भुजतो दुग्गइं जाइ ॥ २३ ॥  
 तम्हाहुजिणिन विट्ठी अप्पसुहं दुक्खकारिणी बहुगा ।  
 विट्ठेहिं रागभावो सो सिवसुक्खं च विग्घकरो ॥ २४ ॥  
 अरिणिज्जियजिणराये रागाइ य जेहि रक्खिया चित्ते ।  
 तिहिं कह हवइ पसन्नो जिहिं कदिदय तेहिं सतुट्ठो ॥ २५ ॥  
 तइ दीय सिद्धिलच्छी अमियकरा पुन्नचंदसारिच्छा ।  
 भरहादिवसगराई जिहिं कारणि चइय बहुइत्थी ॥ २६ ॥  
 तिहिं गहिय सुद्धचरणं सुद्धप्पाधम्मम्मायमाणाणं ।  
 लद्धं केवलणाणं भरहाइयसिवसुह पत्ता ॥ २७ ॥

यदुक्त दशाश्रुतस्कन्धे ।

आयगुत्तेसु सुद्धप्पा धम्मे ठिच्चा अणुत्तरे ।  
 इहं व लभते किंति पच्छाय सुगतिं वर ॥ २८ ॥

जो भायड परमप्पा णाणमयं रागभावरहितं च ।  
 सो गच्छड सिवल्लोयं उज्जोयंतो दसदिसाओ ॥ २६ ॥  
 जो चरड वंभचरणं अणेगुणसेणि आरुहड साहू ।  
 सो पावड मिद्धमुहं णीरावो जो हवड विमये ॥ २७ ॥  
 आगहणा य तिविहा णाणं तंसणचरित्तिठाणंगे ।  
 नं तिय मयसो आया आराहड मिद्धमुहकज्जे ॥ २८ ॥  
 जो रयणत्तयमइयो णियद्वयं मुग्गकारण भणिय ।  
 अन्ने जे परदव्वा मुह्ताडमुहं वंधहंड त्ति ॥ २९ ॥  
 मुह्ताव्वेणं पुन्नं असुह पावंति कुण्डं जो रागो ।  
 पणिणामोऽनन्नगयो दुक्काक्कयकारणं समग ॥ ३० ॥  
 जो मुह्ताणारुवं मंजमतवत्तादिभावण अप्पा ।  
 सोऽसज्जदुक्ककारणकम्मपये मारवय कुण्ड ॥ ३१ ॥  
 जो परदव्व गिन्हाड अवराही लोड वक्का लोये ।  
 परदव्व जो न गिन्हाड सो माहु न वंधण कोड ॥ ३२ ॥  
 अप्पाड चुळ्लाहू सो वग्गड मत्तअट्टकम्मेट्ति ।  
 अप्पधम्माओ न चुवो कम्मेट्ति अवंधणो लोड ॥ ३३ ॥  
 जो अप्पाणं जाणड पुग्गलकम्माओ भावओ अन्नं ।  
 मुहं जाणग भावं सो मन्नं जाणण मव्वं ॥ ३४ ॥  
 जो रयणत्तयधम्मो सो पट्ट आया भणंति सव्वन्नू ।  
 नं भायय परमपयं पमायरहितेण नूहकज्जे ॥ ३५ ॥  
 तं तंमण तं पिच्छड तं णाणं जेण सुणः जीवाणं ।  
 मुणिज्जणि तंयि रक्खड तं परणं भणड मव्वन्नू ॥ ३६ ॥

जो परदग्धेण रवो णियदव्वसहावभावणालीणो ।  
 सो तेण वीदरागो भवियो भवसागरं तरड ॥ ४० ॥  
 पालयड वंभचरणं णिम्मलणीरागमणसंमाहीए ।  
 सो वयइ वंभलोयं अणंतसुहठाणगं भणियं ॥ ४१ ॥  
 संपयवंभवयावो [भासुरदेविज्जवरविमाणं च ।  
 पावइमणुन्नभोयं] तत्थ चुया णिव्रुयं जंति ॥ ४२ ॥  
 एवं पवयणसारं वंभवयं अमियपाणसारिच्छं ।  
 जो चरइ भव्वजीवो संसारविसं निवारेइ ॥ ४३ ॥  
 भावं जिणपन्नतं णिस्संक्रिय जोहु सट्ठइ जीवो ।  
 सो हवइ सम्मदिट्ठी अमियसुहं पावए विडलं ॥ ४४ ॥  
 एसो पवयणसारो सिरिजिणवरगणहरंहिं पन्नतो ।  
 गुरुजिणदत्तपसाया लिहियो कप्पूरमल्लेहिं ॥ ४५ ॥  
 संपइ गणाहिपवरो णिम्मलगुणरयणरोहणसरिच्छो ।  
 सिरिजिणचंदमुणिदो दीवग इव दीवए लोए ॥ ४६ ॥

॥ इति श्रीब्रह्मचर्यपरिकरण सम्मतं ॥

# परिशिष्ट ( ३ )

## महत्तियाण जाति

प्रस्तुत निबन्ध में हम एक ऐसी जाति का परिचय देंगे जिसका नाम मात्र शिला-लेखों और कतिपय प्राचीन ग्रन्थों में ही अवशेष है। जिस जाति वालों ने पूर्व प्रान्तीय जैन तीर्थों के जीर्णोद्धार आदि में महत्त्वपूर्ण भाग लिया है अथवा दूसरे शब्दों में यों कहें कि वर्तमान पूर्व प्रान्तीय जैनतीर्थ जिनके सद्द्रव्य और आत्मभोग के ही सुपरिणाम हैं, एवं जो केवल ३०० वर्ष पूर्व एक अन्धों मंत्र्या में विद्यमान थे, उनकी जाति का आज एक भी व्यक्ति दृष्टिगोचर नहीं होता, यह कितने बड़े संद की बात है।

## नाम और प्रार्थना

इस जाति का मूलनाम प्रसिद्ध लोक-भाषा में 'महत्तियाण' और गिलगल्यादि में 'मप्रिदलीय' भी पाया जाता है।

१. बिहार के महत्तियाण (मप्रिदलीय) मुहाने में मात्र दो पत्तों का शिलालेख मिलता है जो हमारे देश, तथा के अन्धकार में बड़ी ही मशहूर है।

शिलालेखों के कथनानुसार इस जाति की उत्पत्ति अत्यन्त प्राचीन है। प्रथम तीर्थङ्कर श्री ऋषभदेव भगवान के पुत्र महाराजा श्री भरत चक्रवर्ति के प्रधान-मन्त्री श्रीदल<sup>१</sup> के नाम से उनकी सन्तति का नाम भी 'मन्त्रिदलीय' प्रसिद्ध हुआ। मन्त्री शब्द का अपभ्रंश "महता" हैं, अतः उनके वंशजों की जाति का नाम भी उसी शब्दानुसार 'महत्तियाण' कहलाने लगा ऐसा ज्ञात होता है।

### प्रतिबोधक आचार्य

इस जाति को प्रतिबोध देकर जैन बनाने का श्रेय खरतर-गच्छाचार्य श्रीजिनचन्द्रसूरि<sup>२</sup> को है। शिखा-लेखों और पट्टावलियों में इस सम्बन्ध में जो उल्लेख प्राप्त हैं, उनके आवश्यक उद्धरण इस प्रकार हैं:—

१ "नरमणिमण्डित मस्तकाना प्रतिबोधित प्राग्देशीय महत्तियाणि श्रावक वर्गाणा"

( हमारे संप्रहस्थ १६ वीं शताब्दि में लिखित पट्टावली )

२ "नरमणि मण्डित भालो महत्तियाण श्रावक प्रतिबोधकः"

( समयसुन्दरजी कृत खरतरगच्छ पट्टावली )

३ "नरमणिमण्डितभालः श्रीजिनदत्तसूरिभिः स्वहस्तेन पट्टो

१ श्रीऋषभजिनराज प्रथम चक्रवर्ति श्री भरत महाराज सकल मन्त्रि-मण्डल श्रेष्ठ मन्त्रि श्रीदल सत्तानीय महत्तिआण जाति + ( पावापुरी शिलालेख )

२ श्रीजिनचन्द्रसूरि — ये श्रीजिनदत्तसूरिजी के शिष्य थे ।

स्थापितः पूर्वास्यां दशवर्षाणि स्थित्वा महत्ति-आण श्राद्धः  
प्रतिबोधकः ।

( ग्यरतर गच्छ पट्टावली संप्रहः पृ० ११ )

४ 'श्रीजिनचन्द्रमूरि' ( सव्येगरंगशाला प्रकरणकर्ता )  
केचिदन्य ज्ञातीय राज्याधिकारिणोऽपि श्राद्धाः जाता तेभ्यः प्रति  
पातिशाहिना बहु महत्त्वं दत्तम् ततस्तेषा 'महतीयाण' इति गोत्र  
स्थापना कृता । तद्गोत्रीयाः श्रावकाः "जिनं नमामि, वा जिन-  
चन्द्रं गुरुं नमामि, नान्यम्" इति प्रतिज्ञावन्तो बभूवुः"

( क्षमाकल्याणजी कृत पट्टावली, ग्य० प० संप्रह पृ० २३ )

५ 'श्रीजिनचन्द्रमूरि' ( सव्येगरंगशाला कर्ता ) :—धनपाल  
कटाकजाता महत्तिआण गोत्रीया इति ।

"महत्तिआणडा दुट नमऽ कड जिण कड जिणचंद"

( ग्यरतर गच्छ पट्टावली संप्रह पृ० ४५ )

६ "श्री वृहत्स्वरतर-गच्छोय नरमणिनणित्त भाल्लथल  
श्रीजिनचन्द्रमूरि प्रतिबोधित मात्ति-आण श्रीमंघ कारितः

( पावापुरी तीर्थस्थ सं० १६६८ का लेख श्री पूरणचन्द्रजी  
नागर कृत जैन लेख संप्रह । )

उपरोक्त ६ अवतरणों में सं० १-२-३-४ में मणिभागीजी और  
सं० ४-५ में सव्येगरंगशाला कर्ता जिनचन्द्रमूरिजी को इन जाति  
के प्रतिबोधक आचार्य लिखा है । किन्तु उनमें भी परिचय प्रायः

१ ग्यरतर गच्छ पट्टावली संप्रह पृ० ११ में लिखा है ।



मणिधारीजी का ही दिया है अतः ज्ञात होता है कि नाम साम्य की भ्रान्ति से वे वाम संवंगरंगशालाकर्त्ता श्रीजिनचन्द्रसूरिजी के साथ लगा दी है। इन दोनों आचार्यों के समय में लगभग १०० वर्षों का अन्तर है, परन्तु दोनों का एक ही नाम होने के कारण यह भ्रान्ति हो जाना सम्भव है। इन प्रमाणों से यह निर्विवाद सिद्ध है कि इस जाति से प्रतिबोधक खरतर गच्छाचार्य श्रीजिनचन्द्रसूरि थे।

### इस जाति वालों की एक प्रतिज्ञा

नं० ४-५ के अवतरण से इस जातिवालों की एक महत्त्वपूर्ण प्रतिज्ञा का पता लगता है। वह प्रतिज्ञा यह थी कि “हम या तो श्रीजिनेश्वर भगवान को या श्रीजिनचन्द्रसूरि ( एवं उनके अनुयायी साधुसंघ ) को ही वन्दन करेंगे दूसरों को नहीं” इससे उनके सन्यस्त गुण की दृढ़ता एवं अपने उपकारी खरतर-गच्छाचार्यों के प्रति अनन्य श्रद्धा का अच्छा परिचय मिलता है।

उपर्युक्त बात की पुष्टि स्वरूप इस जाति वालों ने जिन-विम्ब और जिनालयों की सभी प्रतिष्ठाएं खरतर गच्छाचार्यों द्वारा ही कराई है।

श्रीजिनकुशलसूरिजी के पट्टाभिषेक महोत्सव में भी इसी जाति के ठक्कुर विजयसिंह ने बहुतसा द्रव्य व्यय १ किया था, जैसा कि श्रीजिनकुशलसूरि पट्टाभिषेक रास में लिखा है:—

१ वाट् पूर्णचन्द्रजी बाहर द्वारा प्रकृति खरतर-नाच्छ-पट्टावली संग्रह पृ० ३०।

“त विजयसिंह ठफुर पयरो मात्तिवाण कुलि मार ।

तउ नामु ठामु तए अप्पियउ तउ गोळइ मउ गणधार । ८।

त गुम्हार धर मटणउ अणलिराणउ नामु ।

त मिलिय मंघ समुदाउ नहि महत्तिवाण अगिरामु ॥ ९ ॥

( हमारे सम्पादित “गेतिहासिक-जैन-काव्य संग्रह” पृ० १६ )

उपर्युक्त ध्रावक ठफुर विजयसिंह की गुरुभक्ति की प्रशंसा पड़ी २ उपमाओं द्वारा इसी राम में उस प्रकार वर्णित है:—

त आदहि ए आदि जिगड भग्गु, नेमि जिन नारायण

पावइ ए जिम भरणिन्दु जिम मेगिय गुरु बीर जिण,

जिण पारि ए गुहगुह भनि मात्तिवाण परि मल्लिय ए.

पट्टिन्नण, तहि पट्टिपुन्न विजयसीहु जनि जमि लियउ ए,

परमार्जन ठफुर विजयसिंह के पुत्ररक्ष ठफुर चलिराज की गाढ़ अभ्यर्थना से परस्परगन्धीय श्रीगणप्रभाचार्य ने “पटा-चक्षक चालावबोध वृत्ति” की रचना की थी, जैसा कि हम ग्रन्थ की निम्न प्रशस्ति से जान लेना है:—

“संवत् १४११ वर्षे श्रीपोत्तमय दिवसे शनिवारं श्रीमदण्णिक पत्तने महागजाधिराज पानमाहि श्री पागेजमाहि विजयराजे प्रवर्त्तमाने श्री चंद्रगच्छालंकार श्रीगुरतरगच्छाभिषति श्री जिन-चन्द्रमूर्तिशायनेश श्रीगणप्रभमूर्तिभिः श्रीमंत्रिदलीय चक्षायतंस ठफुर वाहउ नून परमार्जन ठफुर विजयसिंह नून श्री जिनशामन प्रभावक श्री देवगुप्तांश विन्नासणि निर्गुण भक्तक श्रीजिनभक्त कापकर्षण नृभिन मदाभात् परमार्जन

ठक्कुर वलिराजकृत गाढाभ्यर्थनया पडावश्यकवृत्ति सुगमा  
वालावबोधकारिणी सकल सत्तोपकारिणी लिखिता ।

छ. । शुभमस्तु ॥ छः ॥”

( स० १४१२ लिखित प्रति, वीकानेर ज्ञानभंडार मे से )

## कुलीनता

इस जाति की कुलीनता और उच्चता ओसवाल, श्रीमालादि जातियों से किसी तरह न्यून नहीं थी । श्रीजिनपतिसूरिजी कृत समाचारी १ के अन्त मे खरतरगच्छ मे आचार्यों, उपाध्यायों, महत्तरा आदि पदों के योग्य कुलों की जो व्यवस्था की गई है उनमें महत्तिआण जाति को भी वीसा ओसवाल, श्रीमालों की भांति आचार्य पद के योग्य बतलाई गई है ।

## लेखों की सूची

इस जातिवालों के निर्माण कराये हुए जिन विम्ब व जीर्णोद्धारों के उल्लेखवाले बहुत से शिलालेख इस समय उपलब्ध हैं । जिनमे से बाबू पूरणचन्दजी नाहर द्वारा सम्पादित 'जैन लेख संग्रह' के भाग १-२-३ आदि के लेखों की संवतानुक्रम सूची तथा अन्य सूचिया नीचे दी जाती है । जिससे पाठकों को उनके उत्कर्ष एवं सुकृत्यों का संक्षिप्त परिचय हो जायगा ।

१ उ० श्री जयमागरजी सकलित श्रीजिनदत्तसूरि चरित्र उत्तरार्ध में प्रकाशित ।

- सं० १४१२ आपाढ कृष्णा ६ २३६  
 सं० १४३६ फाल्गुन शुक्ला ३ १०४६  
 सं० १५०४ फाल्गुन शुक्ला ६ २७०, २३६, २५६,  
 १७१, १७२, १८४६, १८५४, १८५५, १८५६  
 सं० १५१६ वैशाख शुक्ला १३ ४८२  
 सं० १५१६ आपाढ कृष्णा १ २४०१, २१६, ४१८,  
 ४१६, २८१, २१५, २१७, ४८, १६१  
 सं० १५१६ आपाढ कृष्णा १० १८६  
 सं० १५१६ आपाढ शुक्ला १० १०३  
 सं० १५२३ वैशाख शुक्ला १३ ११५७  
 सं० १५२७ माघ कृष्णा ५ १६  
 सं० १६८६ वैशाख सुदि १५ २७१  
 सं० १६८८ (१८६) - - १७६  
 सं० १६६८ वैशाख शुक्ला ५ १६२, १६०, १६१  
 सं० १७०२ माघ शुक्ला १३ १६८

भीमः बुद्धिमागमरिजा मप्रतिन "जैन धानु प्रतिमा  
 लेख संप्रद" भा० १-२ में :-

- सं० १६५६ आपाढ सुदि ५ .....  
 सं० १६५२ आपाढ घटि २ १७०७  
 सं० १६५६ आपाढ घटि १ १११, ४८७  
 सं० १६६६ १३७८

मुनिराज श्रीजयन्तविजयजी सम्पादित 'अर्चुदगिरि  
शिलालेख संग्रह' में :—

सं० १४८३

लेखांक १७६

हमारे संगृहित 'वीकानेर जैन लेख संग्रह' में :—

सं० १५२३ वै० सु० १३ अजितनाथजी का मन्दिर  
श्रीजिनविजयजी सम्पादित 'प्राचीन जैन लेख संग्रह' भा० २ में :—

सं० १४८५ कार्तिक शुद्ध ५ ५६—

सं० १४६६ आषाढ़ शुद्ध १३ ६०

( ये दोनों लेख गिरनार यात्रा के हैं )

## गोत्रों के नाम

उपरोक्त शिलालेखों में इस जाति के बहुत से गोत्रों के नाम  
उपलब्ध होते हैं जिनकी नामावली इस प्रकार है :—

दक्षिण १८६, १४०७ ( बु )	वायङ्ग २१६, १३७८ ( बु )
काग १०३, १६१, १६२, २१५,	वात्तिङ्गिया १९२
२१७, २७०, २८१, ४१८,	सयला १६२
४१९, ६६१ ( बु )	मयेल १६९७
काट्ठा १९२	महवा १६६७
चौनदा १७६, १९०, १९८, २४५,	पाहड़िया १६९७
२७१, १९६, १९२	मीणवाग १६६७
जौजियाग १९२	वज्रागरा १६९७

जाट २३९, २५६	जूक १६९७
दानूरा १९२	मुट ११५७
हुद १९	मगाइ ४८७ ( बुद्धिगागरमूरि
नानूडा १९२, ६० (जि०स०भा० २)	मगाइत १ )
बालिडिया १६७	गुनामउ ५६ ( जिनिपि० सम्पादिन
मुटतोइ १७६, १७२	भा० १-२ )
रोहडिया ९०	

जिम जाति के गोत्रों की संख्या केवल प्रतिमा लेखों में इतनी प्राप्त हो उस जाति वालों की जनसंख्या कितनी अधिक होनी चाहिये उसका अनुमान पाठकगण स्वयं कर लें ।

### निवासस्थान और गृह-संख्या

इस जातिवालों का निवासस्थान कौन कौन से प्रांतों में और किन किन नगरों में था, इसके विषय में सतरावीं शताब्दी में लिखे हुए हमारे संप्रदाय के एक पत्र में अच्छा प्रकाश पड़ता है । यद्यपि इस पत्र में थोड़े से स्थानों ( घरों की संख्या के साथ ) के ही नाम हैं, तो भी यह विज्ञेय उपयोगी होने से पाठकों की जानकारी के लिये, इसका अंश हम यहाँ उद्धृत करने हैं ।

श्री महत्तियाण गगतर श्रावक इतरे ठामे प्रामे चमड छड.—

१ घर २५ विहार । तत्र पौपलिया

२ घर २० गाणिकपुर

- ३ घर    ५ पटणइ  
 ४ घर    २ वारि ( वाढ़ )  
 ५ घर    ३ भागलपुर  
 ६ घर    १ वांगर मऊ  
 ७ घर    ४ जलालपुर  
 ८ घर    २० सहारणपुर । गंगापारेपि केपि ।  
 ९ घर    २० अमदावादे  
 माजनइ सर्व घर १००

इससे पहिले के शिलालेखों और खरतरगच्छ की वृहत् गुर्वावली में दिल्ली, जवणपुर ( जौनपुर ), डालामऊ, नागौर आदि स्थानों में भी इस जाति के प्रतिष्ठित धनीमानी श्रावकों के निवास करने का उल्लेख पाया जाता है। बिहार तो इनका प्रमुख निवासस्थान था, जिसका परिचायक वहाँ अब भी “महत्तियाण मुह्ला” नाम से प्रसिद्ध एक मुहल्ला है और वहाँ उन्हीं के बनाये हुए जिनालय और धर्मशाला विद्यमान हैं।

चौदहवीं शताब्दि से सतरहवीं शताब्दि पर्यंत मंत्रिदलीय लोगों की बड़ी भारी जाहोजलाली ज्ञात होती है। वे केवल धनवान ही नहीं परन्तु बड़े-बड़े सत्ताधीश एवं राजमान्य व्यक्ति थे। अपने उपगारी खरतर-गच्छाचार्यों की सेवा, तीर्थयात्रा, संघभक्ति, और अर्हन्तभक्ति में इस जातिवालों ने लाखों रुपये खुले हाथ से व्यय कर अपनी चपला लक्ष्मी का सदुपयोग किया था।

अनन्तर गच्छ वृद्ध गुवांवली। मे उनके मुहृत्यों का मनोस  
एवं श्लाघनीय वर्णन भी मिलता है, जिसका संक्षिप्त सार यहाँ  
लिया जाता है।

संवत् १३७५ में कलिकालकेवली श्रीजिनचन्द्रमूर्ति के साथ दिल्ली के ठफ्फुर विजयसिंह, रुदा ( डालामऊ के ) अचलसिंह ने फलवर्द्धि पार्श्वनाथ की यात्रा की थी और वहाँ ठ० सेठ ने याग सहस्र द्रव्य देकर इन्द्रपद प्राप्त किया था, एवं इसी वर्ष में ठफ्फुर प्रतापसिंह के पुत्रराज अचलसिंह ने गुगुबुद्दीन मुरत्राण से सर्वत्र निर्वाह यात्रा के निमित्त फरमान प्राप्त कर संय महित हस्तिनापुर, मथुरा आदि अनेक तीर्थों की यात्रा की थी। एवं मार्ग में गुगुबुद्दीन मुरत्राण की फँद से द्रमकपुरीय आचार्य को लुट्टाया था।

सं० १३७६ में ठकुर आशपाल के पुत्र जगन्निह ने श्रीजिनगुशलसूरिजी आदि संघ के साथ आराधन तारुणा आदि तीर्थों की यात्रा की थी। सं० १३८० में मणपति ग्यपति के संघ में मन्त्रिदलीय सेंट गधनपाल भी मुख्य सुधायकों में थे। सं० १३८१ में श्रीजिनगुशलसूरिजी संघ के साथ धाधुला नगर में पधारें उस समय ठकुर उदयगर्ग ने मणयात्मल्य आदि कार्यों द्वारा जैन धर्म की प्रभावना की थी। सं० १३८३ में श्रीजिनगुशलसूरिजी के जालौर पधारने पर मन्त्रिदलीय सेंट भोगराज

१. इस पत्रिका में समाचार, विज्ञान, और कविता के अति-  
 २. महत्वपूर्ण विषयों पर विशेष ध्यान दिया गया है।

[illegible]



के पुत्र मं० सलङ्गवर्णसिंह आदि ने फाल्गुन कृष्णा ६ से लगातार १५ दिनों तक पूज्यश्री के पास प्रतिष्ठा, व्रतग्रहण, उद्यापनादि नन्दिमहोत्सव बड़े समारोह से सम्पन्न करवाये। सं० १३८३ फाल्गुन कृष्णा ६ को राजगृह के “वैभारगिरि” नामक पर्वत के शिखर पर ठ० प्रतापसिंह के वंशधर अचलसिंह ने चतुर्विंशति जिनालय निर्माण कराया था. उसके मूलनायक योग्य श्रीमहावीर स्वामी एवं अन्य तीर्थङ्करों की पायाण एवं धातुनिर्मित विम्बों की प्रतिष्ठा श्रीजिनकुशलसूरिजी के करकमलों से सम्पन्न हुई थी।

### उपसंहार

इस प्रकार उपलब्ध साधनों के द्वारा जो कुछ भी इस जाति के विषय में ज्ञात हुआ वह इस लेख में संक्षिप्त रूप से लिख दिया गया है। इससे विशेष जानकारी रखनेवाले सज्जनों से अनुरोध है कि वे इस सम्बन्ध में विशेष प्रकाश डालने की कृपा करें।

[ ओसवाल नवयुवक वर्ष ७ अंक ६ से उद्धृत ]

---

१ सं० १४१२ में उत्कीर्ण राजगृह पार्श्व जिनालय प्रगति में श्री जिनकुशलसूरिजी के द्वारा त्रिपुलागिरि पर ऋषभदेव की मूर्ति की प्रतिष्ठा की जाने का उल्लेख है। उक्त प्रशस्ति बड़े महत्त्व की है और अनुवाद श्री जिनविजयजी सन्गादिन ‘प्राचीन जैन लेख संग्रह’ में भी प्रकाशित है।

## विशेष नामावली

अजमेर	६,९	कन्यानयन	२५
अजितनाथ विभिन्न	९	कपूरमह धायक	२९
अतिथल	१९	कंदम राजा	८
अनेकान्न जय पनाका	७	कन्यापरिजयनी	८
अभयकुमार चरित्र	४	कुतुबमीनार	२०
अभयचन्द्र	९	कुमारपाल महाराजा	८
अभयनिलकोपाख्याय	४	कुचन्द्र मा०	१४, १८, १९
अपभ्रंश काव्यप्रयोग	३	क्षमाकन्याय	४, १५
आनिका ( हांसी )	९	क्षेमन्धर	८
आजापाती	८	गहरागण	१०, २७, २८, २९
अन्तपुर	९	गहनगण पट्टागणी	२८
अक्ष ( सिन्धु-देशस्थ )	८	गहनगण पट्टागणि गण्ड	२
अक्षभद्र	१०	गोपिका ( गज ) क्षेमपाल	२०
अक्षभद्र	८	गजधरमार्गशालक दृष्टान्त	
ऐतिहासिक-सैन्य-व्याप-व्यवहार	७, २६		२, ३, ६, २०
औसताल मण्डुकर	२६	गणेश	९
आला मण्ड	२८	माधवराज चौः मिर्गी	३
अविद्वान्दी	९	कु. अन्त मणि	२०, २२, २३

ગુગમદ્રગણિ	૧,	જિનપ્રભસૂરિ	૨૫
ગુણવર્દન	૮	જિનમદ્ર, જિનમદ્રાચાર્ય	૭, ૨૫
ગુણશ્રી	૮	જિનમદ્રસૂરિ	૨૬
ગુર્જાવલી	૬, ૭, ૮, ૧૫	જિનરથ	૭
ગોહક સાં	૮	જિનવહ્નિસૂરિ	૧૦
ચત્તરી	૩	જિનશેત્રોપાધ્યાય	૧૦
ચન્દ્રતિલક ઉપાધ્યાય	૪	જેસલમેર	૨
(ચન્દ્રપ્રભવિધિ-ચૈત્ય	૮)	જૈનતીર્થ મીમપણી અને રામસૈન્ય	૮
જગહિત	૭	જૈનસાહિત્ય કા સક્ષિસદ્ગતિહાસ	૬
જગધી	૮	જૈનયુગ	૮
જયદેવાચાર્ય	૨૪	હીસા	૭
જયગોલ	૭	તગલા ગ્રામ	૬
જિનકુશલસૂરિ	૧	ત્રિભુવનગિરિ	૬, ૭
જિનચન્દ્રસૂરિ ૧, ૨, ૪, ૫, ૬, ૧૦, ૧૩,		તૈવર	૧૫
૧૬, ૨૦, ૨૨, ૨૩, ૨૬,		દિહી ( યોગિનીપુર—જોયણિપુર )	
૨૬, ૨૮, ૨૯, ૩૦		૫, ૬, ૧૫, ૧૭, ૧૮,	
જિનચન્દ્રસૂરિ અષ્ટકમ્	૩૦	૨૦ ૨૯, ૩૦	
જિનદત્તસૂરિ ૧, ૨, ૩, ૪, ૫, ૬, ૯, ૧૦,		ટેલ્હણડે	૨, ૩૦
૧૪, ૧૬, ૧૭, ૨૧, ૨૩,		દેવપ્રભસૂરિ ( મલધારિ )	૧૧
૨૪, ૨૮, ૩૦		દેવમદ્ર	૯
જિનપતિસૂરિ ૭, ૮, ૯, ૧૦, ૨૪, ૨૫, ૨૭		ધનેશ્વરસૂરિ	૬
જિનપાલોપાધ્યાય ૩, ૪, ૧૦, ૧૬, ૨૫, ૨૯		નરચન્દ્રસૂરિ	૧૧

मरपति मुनि	७,२३	धीमानेर	२
मरपालपुर	९	भट्टीहरि	२९
म्यागवन्दकी	११	भीमपट्टी, नीलपट्टी	७
न्यायालयार	७	मधुरा	७
नागराज	९	मदनपाल महाराजा	१०, १६, १८, २६
पद्मचन्द्राचार्य	१०, ११, १२, १३, २९	मण्डोटे ( मरोटे )	८
पद्मप्रभ	२४	महाविद्यालय ( मन्त्रिदालीय )	२०
प्रद्युम्नाचार्य	८	मालाल धावक	९
प्रद्युम्नगुह	६	महायान	९
प्रह्लादगुह	४	महावीर ग्यामी	३, २०, ३०
प्रमोदीराज महाराजा	२४	मार्गचन्द्र ग्यामी	१४
पारुष्य ग्यामी	१४, १९	मोन्दगुह	२८
पारुष्यगुह	७	मानगुह	८
पार्श्वनाथ	३१	मादेय	२८, २९
पार्श्वनाथ विधिर्षय ( मन्त्रि )	८, ९, १०, ११	मेर	३
पारुष्यगुह महोपाध्याय	१०	यसमण्ड	९
पुनोदय ग्यामी	१८	यसोभट्ट	९
पुनोभट्ट	५	यसोभट्टगुह	२९, ३१
पुनोभट्ट ( -पुनोदय )	२	यसोभट्टाचार्य	३
पुनोदय	९, २६	पुनोदय भोक्तृमण्डगुह	१
पुनोदयगुह	२४	गुह	२८
पुनोदयगुह	२४	गुह	११

$\frac{d}{dt} \left( \frac{\partial L}{\partial \dot{x}} \right) = \frac{\partial L}{\partial x}$

रासल	२,३,५,३०	वीर जिनालय	७
रूपल्ली	९,१६	वीरभद्र	७
रूपल्लीय शाखा	१०	वीरनय	७
ललितविजयजी	२६	वीरसिदान	१३
लवणखेटक	७,८	शान्तिनाथ विधिचैत्य	९
लोहट ठक्कुर	१४,१९	शालिभद्र चरित्र	५
व्यवस्थाकुलक	२८	शीलसागर	७
वागड देश	३,२४	श्रीधर	११,
वाढली*	९	श्रीमाल	१५,
वादस्थल	८	सरस्वती	८
वादिदेवसूरि चरित्र	६	सागरपाढा	९
वासल	३	छमति गणि	२
विक्रमपुर (विक्रमपुर)	२, ३, ४, २०, ३०	सूरि-परम्परा-प्रशस्ति	२६
विनयशील	८	सोमदेव	७
विविधतीर्थ-कल्प	२५	हर्षपुरीय गच्छ	११
वीर जिनेश्वर	२	हेमदेवी गणिनी	७

---

\* पुस्तक के टिप्पण मे भूल से इसके स्थान में वीरसिदा छप गया है ।  
पाठक सुधार लें ।

